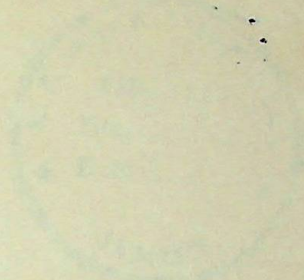
शीराज़ा

सम्पादक :
केहरिसिंह 'मधुकर'

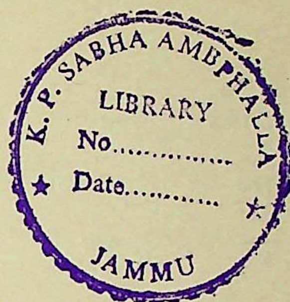
ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू - काश्मीर,
जम्मू





हिन्दी

●



शीराज़ा

(२) १९७०

संचालक :
नीलाम्बर देव शर्मा

सम्पादक :
केहरिसिंह 'मधुकर'

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू

प्रकाशक : सचिव अकादमी जम्मू-कश्मीर

मुद्रक : डोगरा प्रकाशन प्रेस, कच्ची छावनी जम्मू ।

मूल्य : दो रुपये

पत्र-व्यवहार का पता :

सम्पादक शीराज़ा [हिन्दी]

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू व कश्मीर,

एक्सचेंज रोड, जम्मू

फोन : ५०४०

दो शब्द



शीराजा का दूसरा अंक आप की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें खुशी का अनुभव हो रहा है।

इस अंक में लेख, कहानी तथा कविता का पहले ही की भान्ति संकलन किया गया है।

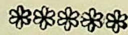
पाठक सामग्री को रोचक पाएंगे।



सम्पादक :

केहरिसिंह "मधुकर"

क्रम-संख्या



कश्मीरी भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के लिए शैवदर्शन तथा सूफीमत का मुख्य रूप से अध्ययन करना अनिवार्य है। कृष्णभक्त कवियों पर शैवदर्शन की अपेक्षा श्रीमद्भागवत का गहरा प्रभाव पड़ा है.........।

उन्नीसवीं शताब्दी के कश्मीरी कवि

परमानन्द और उनकी हिन्दी कविता

★

प्रो० चमनलाल सपरू

कश्मीरी साहित्य में भक्ति साहित्य भी काफी मात्रा में उपलब्ध है। वास्तव में यदि देखा जाए तो कश्मीरी साहित्य ही लल्लेश्वरी के रहस्यपूर्ण भक्ति-काव्य से आरम्भ होता है। लल्लेश्वरी कश्मीरी काव्य की निर्गुण शाखा की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। इस के अतिरिक्त रूप भवानी तथा मिर्जा काक का नाम भी इस शाखा में गिना जा सकता है। रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि प्रकाश भट्ट हैं, यद्यपि इस शाखा में शंकर त्रिछल, विष्ण कौल, व्यसू तथा नीलकंठ शर्मा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। प्रेम मार्गी (सूफी) शाखा के अन्तर्गत शेख नूरुद्दीन, हबीब उल्लाह नौशहरवी, शाह कलंदर, शमस फकीर तथा वहाबखार का नाम प्रमुख है। कृष्ण भक्ति शाखा में महाकवि परमानंद का नाम सर्वोपरि है। इस शाखा के अन्तर्गत कृष्ण राजदान का नाम भी उल्लेखनीय है।

कश्मीरी भक्ति काव्य की पृष्ठ भूमि का अध्ययन करने के लिए शैवदर्शन तथा सूफीमत का मुख्य रूप से अध्ययन करना अनिवार्य है। कृष्ण भक्त कवियों पर शैवदर्शन की अपेक्षा श्रीमद्भागवत का गहरा प्रभाव पड़ा है। भक्त कवियों ने जहां कश्मीरी साहित्य की अभिवृद्धि में अपूर्व योगदान दिया वहां इन का हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य और एक मिली-जुली संस्कृति को जन्म देने में भी बड़ा भारी योगदान रहा है। इन संत और सूफी कवियों की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान में कोई अंतर नहीं। आध्यात्मिक क्षेत्र में यह बाहरी भेद-भाव नहीं होते हैं। तभी तो लल्लेश्वरी कहती हैं :

शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्योंद त मुसलमान।
त्रुकै छुख त पान परज़ान,
सुई छै दयस सॉत्य ज़ानी ज़ान।

(शिव ही सर्वत्र व्याप्त है। हिन्दू और मुस्लिम में भेद न मान। ज्ञानी हो तो अपने आप को पहचानों। वही परमात्मा के साथ वास्तविक पहचान है)।

शेख नूर उद्दीन, जिसे प्रायः नुन्द ऋषि के नाम से जाना जाता है, कहते हैं :

पो'ज़ यो'द बोज़ख पांच न्वम्रख,
नत माज़य न्वम्रख रछि, न माज़।
शिवस सा'त्यन यलि म्युल करख,
स्यद्धि च्य ऋषि मालि त्यलि न्यमाज़।

(यदि तुम तत्व [सत्य] को जानना चाहते हो, तो पांच इन्द्रियों को वश में रखो। अपने शरीर को झुकाने से कुछ न होगा। यदि तुम शिव से एक हो जाओगे, हे ऋषि ! तभी तुम्हारी निमाज़ सफल होगी।)

इस "श्रुख" में 'शिव' तथा 'निमाज' के अद्भुत सामंजस्य को देखा जा सकता है।

जीवन परिचय

इस प्रकार की स्वस्थ आध्यात्मिक एवं साहित्यिक परम्पराओं से युक्त कश्मीर मंडल में महाकवि परमानंद का जन्म हुआ। उन का जन्म १७९१ ई० में अनंतनाग ज़िला के सीर गांव में हुआ। यह गांव प्रसिद्ध तीर्थ मटन (मार्त्तण्ड) से थोड़ी दूरी पर स्थित है। इस समय कश्मीर पर पठानों का शासन था। इनके पिता का नाम कृष्ण पंडित था और माता का नाम सरस्वती। आरम्भ में फारसी की शिक्षा प्राप्त

की। उस समय फारसी भाषा ही शिक्षा का माध्यम थी। इन का बचपन का नाम नंदराम था और 'गरीब' उपनाम से फारसी में भी कविता किया करते थे। पं० नारायण जू मूरचगर (मूर्त्तिकार) द्वारा निर्मित इनका एक प्राचीन चित्र इन के जन्म स्थान पर उपलब्ध है। सीर गांव में सरस्वती परमानंद की उपास्य देवी थीं। बाद में अपने जन्मस्थान के ही पास पहाड़ी पर स्थित 'भर्गशिखा' के मंदिर में दुर्गा की उपासना किया करते थे। इस स्थान के अनुपम प्राकृति सौंदर्य ने इन के भक्ति काव्य में भी अद्‌भुत-काव्य सौंदर्य का समावेश किया है। इनके पिता पटवारी थे और उनके देहांत पर यह भी पटवारी बने। इनका विवाह मालद्यद नामी एक कन्या के साथ काफी अल्पवय में हुआ था। मालद्यद उग्र स्वभाव की थी। परमानंद विनोदी स्वभाव के थे। उस समय पटवारियों को बड़ी नीच दृष्टि से देखा जाता था। परमानंद का एक अधिकारी मिसरा राधूमल था। इसके कटु-व्यवहार से तंग आकर इन्होंने अपने एक पद में उस पर व्यंग कसा था।

परमानंद पर समसामयिक साधु-महात्माओं का काफी प्रभाव रहा। इन में हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। परमहंस स्वामी आत्मानंद जी के साथ इन्होंने काफी समय व्यतीत किया और उनके साथ वेदांत का खूब अध्ययन किया। एक सिख साधु के सत्संग से गुरु ग्रन्थ साहिब का अध्ययन किया। ग्रन्थ साहिब की इन पंक्तियो :

इक लख पूत सवा लख नाती,
ते रावण घर दिवा न बाती।

को इस प्रकार अपनी एक हिन्दी रचना में इन्होंने प्रस्तुत किया है।

इक लख पूता सवा लख नाते,
जिस रावण घर दिवा न बाते,
क्या फल पाया कंसासुर ने...।

मुसलमान फकीरों में वाहब साहब के साथ इन का सम्पर्क रहा। परमानंद ने इनकी इच्छानुसार फारसी शब्दों से मिश्रित एक कश्मीरी कविता लिखी। यहां यह बात स्मरणीय है कि पंडित परमानन्द कश्मीरी कविताओं में संस्कृत मिश्रित शब्दावली का प्रयोग किया करते थे। प्रसिद्ध कवि महमूद गामी से भी इन की भेंट बताई जाती है। इस के अतिरिक्त इन का एक पड़ोसी पं० टिकाराम था; वह साधु था और दार्शनिक, धार्मिक तथा नैतिक विषयों पर फारसी में कविता किया करता था। उस से भी परमानन्द प्रभावित थे।

प्रारम्भ में उन्होंने देवी की प्रशंसा में काव्य रचना की। जैसा कि पहले बताया गया है मट्टन में 'भर्ग शिखा' भगवती की स्थापना है। कवि की उपास्य देवी होने के

कारण इन्होंने उक्त देवी की प्रशंसा में स्तुति की है। इसकी प्रारम्भिक पंक्ति यूं है :

श्री भर्ग रूपी राज्ञा भवानी,
लीन कर च़ दीन अस्य लि चॉनिए।

कई अन्य भक्ति गीत इन्होंने सीर गांव में सरस्वती देवी के पवित्र कुण्ड पर साधना करते हुए रचे हैं।

महाकवि परमानन्द ने अपनी साधना से योग की उच्च अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इन तथ्यों का संकेत उनकी कतिपय रचनाओं में मिलता है। अमरनाम यात्रा से सम्बन्धित उनकी कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

मास्टर जिन्दा कौल जी ने इनकी कविताओं को निम्नलिखित क्रम से विभाजित किया है :

(१) देवी भवानी, गणेश, शिव, विष्णु आदि की प्रशंसा में गाए गए विनय के पद। इन पदों में कवि ने अपने किए पापों का उल्लेख करते हुए क्षमा-प्रार्थना की है।

(२) दूसरे भाग में इनकी अमरनाथ जी की यात्रा जैसी कविताएं आती हैं। इन में योग सम्बन्धी बातों पर काफी प्रकाश डाला गया है।

(३) तीसरे भाग के अन्र्गत उनकी तीन लम्बी कविताएं आती हैं। (क) सुदामा चरित्र (ख) राधा स्वयंवर (ग) शिव लग्न। इन कविताओं का केन्द्रीय भाव क्रमशः सुदामा और श्रीकृष्ण का अनन्य प्रेम, राधा तथा अन्य गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम तथा शिव और उमा का मिलन है। यह तीनों कविताएं परमात्मा का जीवात्मा के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाती हैं और इसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम और आकर्षण।

आगे चलकर 'मास्टर जी' ने परमानंद की फुटकर कविताओं के दो भेद किए हैं :—(१) आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले जिज्ञासुओं के निमित्त कवितायें। इनमें ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनाओं का उल्लेख किया गया है। (२) अपने अनुभव की परिपक्वता के फलस्वरूप लिखी गई वेदांत पर आधारित रहस्यपूर्ण कविताएं।

परमानन्द की काव्य-शैली की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है। उनके काव्य में यत्र-तत्र अनुप्रास एवं यमक की अनुपम छटा प्राप्त होती है। एक उदाहरण प्रस्तुत :

पोशतस दीवकियि लूख आ'स्य यिवान,
पोश तस पूज़ि ऑस्य लागानो,
पोशतस ज़ि कृष्ण उपकारक सतानॅ।

प्रथम पंक्ति में "पोशतस" का अर्थ बधाई देना होता है। दूसरी पंक्ति में "पोशतस" का अर्थ उसे फूल अर्पित करते थे, होगा। तीसरी पंक्ति में "पोशतस" का अर्थ चिरंजीव होता है।

परमानन्द के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। किन्तु दोनों अल्पवय में मर गए। बड़ा विवाहित भी था। इस भौतिक सुख से वंचित होने के दुःख के अनुभव का वर्णन उन्होंने एक स्थान पर किया है :

कुन न कीवल न सार सूरम'च् आश,
निः पुतुर त नित्रन न रूदमुत-गाश।

(मैं अकेला हूं, मेरी आशा विलीन हो गई है। निःसंतान हूं और आंखों में प्रकाश नहीं रहा है)।

महाकवि परमानन्द के कई योग्य शिष्य हुए। उनमें नागाम के पं० लक्ष्मण जू प्रमुख हैं। यह भी कवि थे और इन्होंने 'नलदमयन्ती' नामक काव्य की कश्मीरी में रचना की है।

इनके गांव का मुकदम सालेह ग़नाई यद्यपि परमानंद का अधिकारी था, फिर भी उनका काफी आदर करता था। आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी पहुंचा हुआ जान कर वह परमानन्द की सेवा भी करता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमानंद एक उच्चकोटि के योगी होने के साथ-साथ महाकवि भी थे। इनका देहांत १८८० ई० में हुआ।

महाकवि परमानंद पहले कश्मीरी कवि हैं जिन्होंने हिन्दी में भी कविता की। परमानंद के समय यहां की राजनैतिक परिस्थिति में परिवर्तन हुआ था। पठानों का शासन समाप्त हुआ था। सिख शासन के २७ वर्षों ने और फिर धर्म- प्रिय डोगरा प्रशासकों ने यहां के त्रस्त हिन्दू समाज के लिए धार्मिक जीवन बिताने के लिए एक स्वतंत्र एवं अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया था। भारत के अन्य भागों से काफी संख्या में धर्म-प्रिय पर्यटक, साधु आदि कश्मीर के प्रमुख तीर्थों और विशेषकर अमरनाथ जी की यात्रा करने के लिए आते थे। मटन ग्राम अमरनाथ जी के मार्ग में ही पड़ता है और साथ ही यह एक अखिल भारतीय महत्व का तीर्थ है। यहां पर गर्मियों के मौसम में काफी देर तक साधुओं का निवास रहता है। परमानंद जी का इन साधु-सन्यासियों के साथ संपर्क होने लगा। वेदांत पर चर्चा, श्रीमद्भागवत का पाराण और संकीर्त्तण आदि के कार्य-क्रम प्रायः आयोजित होते थे। इन संकीर्त्तन आयोजनों में महाकवि परमानंद हिन्दी के प्रमुख भक्त कवियों की कृतियों से परिचित हुए। अतः हम देखते हैं कि परमानंद पर जो व्यापक प्रभाव भक्ति का पड़ा है वह इन्हीं हिन्दी कवियों की कृतियों के कारण है। उन दिनों मटन ग्राम में स्वामी आत्मानंद जी नामक एक सन्यासी रहा करते थे।

ये बड़े ही विद्वान और योगी थे। इनके संपर्क में रह कर परमानंद ने वेदांत दर्शन का गहन अध्ययन करने के साथ संस्कृत भाषा का भी अध्ययन किया। यही कारण है कि उनकी कविता में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। कहीं-कहीं पर तत्सम शब्द भी काफी संख्या में मिलते हैं।

गोकल हृदय म्योन तति चोन गूर्यवान,
चित विमर्श दीप्तिमान भगवानो।

इन में गोकुल, हृदय, चित, विमर्श दीप्तिमान तथा भगवान शब्द संस्कृत के हैं। उनकी बहुप्रशंसित कविता की प्रथम पंक्ति यहां उद्धृत की जाती है।

कर्म भूमिकायि दिज़ि धर्मुक बल,
संतोषि ब्यालि भवि आनंद फल।

इसमें कर्मभूमि, धर्म, बल, संतोष, आनंद-फल, संस्कृत के शब्द हैं। उपर्युक्त कविता के शब्दों को भली प्रकार न समझने के कारण परमानंद ने खिव निवासी "वहाब खार" (जो एक दरवेश थे) को कृषि सम्बन्धी आध्यात्मिक अर्थ से पूर्ण एक कविता सुनाई थी। जिस में करारदाद, वादा, ज्यादा जैसे फारसी के शब्द प्रयुक्त किए गए हैं।

परमानंद की हिन्दी कविता पर पंजाबी भाषा का भी प्रभाव पड़ा है। इसका कारण सिख शासक का प्रभाव तथा मटन में सिखों के गुरुद्वारे में ग्रंथियों के साथ परमानंद का सम्पर्क हो सकता है। एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है:

मन कंसा तन मथुरा होंदा,
कृष्ण आतमा हृदि गोकुल रहंदा,
नारद विवेक सच सनियां देंदा।

इसमें 'होंदा' 'रहंदा' और 'देंदा' पंजाबी के शब्द हैं।

परमानंद की लग-भग एक दर्जन हिन्दी कवितायें उपलब्ध हैं। इनका महत्व संख्या की दृष्टि से नहीं, अपितु हिन्दी भाषा और साहित्य के देश-व्यापी स्वरूप का आकलन करने के लिए उनकी तत्कालीन उपयोगिता और प्रभाव को समझने की दृष्टि से आंका जाना चाहिए। कश्मीर के इस महाकवि की "हिन्दी कविताओं" की समीक्षा काव्य-शास्त्र की कसौटी पर न कस कर इसके राष्ट्र-भाषा के महत्व और उसकी विस्तार सीमाओं के मूल्यांकन तथा विभिन्न प्रदेशों के पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से करनी होगी।

श्री कृष्ण का जन्म हुआ है और भगवान् शंकर ने उनका दर्शन करने का विचार किया है और योगी का रूप धारण करके भिक्षा प्राप्ति का स्वांग रच कर

गोकुल में पधारे हैं। इस दृश्य का अनुपम चित्रण परमानंद ने इस प्रकार किया है :

भिख्या[1] मांगन सांग[2] बनायो,
आयो सदा शिव गोकल में।
दर्शन करने को ध्यान धरायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

नंगे सिर और नंगे पैरे,
नन्दकेश्वर का सवारी था।
अंग में भस्मा भभूत चढ़ायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

हाथ में त्रिशूला कान में मुन्द्रा,
सुन्दर मुख को करा कराल।
घंटा शब्द और शंख बजायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

गल में नागेन्द्र हारा पल में,
जल में जैसे उठी तरंग।
गोकल में भूकंप मचायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

यशोदा ने देखा एक भैरव-स्वरूप भिक्षा मांगने द्वार पर आया है। उसने श्री कृष्ण को छिपा लिया। इस बात को अंतर्यामी ने समझ लिया :

अंतर्यामी स्वामी देखा,
अन्तर बाहर पूर्ण मय।
बालकृष्ण का मुख उसने छिपायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

---

1 भिक्षा।
2 स्वांग।

यशोदा श्री कृष्ण को घर में छिपा कर अन्न की मुट्ठी भर कर 'जोगेश्वर' के पास जाती है :

लेकर दाना मुड़ आयो यसोदा,
वसुदेव का वासुदेव न साथ।
सामने होके हाथ जुड़ायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

यशोदा को क्या मालूम उसके घर में किस विभूति ने जन्म लिया है। 'जोगेश्वर' श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

यह बालक है यसोदा माई,
त्रिजगतांदा स्वामी है ।
जिसको बतायो उसको बतायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

ना वेद आख[1] सके ना भाषा,
व्यास पराशर शुक देव,
महिमा जिसकी हमको दिखायो;
आयो सदा शिव गोकल में ।।

गोपियों के विरह वर्णन और श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट-भक्ति का परमानंद ने सूक्ष्म वर्णन किया है। इन कविताओं में एक विशेष बात उल्लेखनीय है कि इन में वेदांत की अद्वैत भावना को भी समझाया गया है :

ना तुम देखो कृष्णा श्यामा,
पतिया हमारा (म्हारा) लूको[2],
बाज़ीगर ने बाज़ीगरी की,
जिगर हमारा पारा लूको ।।
... ...

1 कह सके।
2 लोगो।

आखूंगा हम ना कह रखूंगा,
ना कहूं तो मर जाऊंगा ।
रिस के नसना, उसका हंसना,
चोरों का अलंकारा लूको ॥

... ...

नेत्र प्रकाशक सूरज साड़ा,
हमको न आवे देखन में भी ।
ऐसा साड़ा देखो लूको,
जैसा जग में पारा लूको ॥

... ...

एक और लीला[1] (कविता) गोपियों द्वारा यूं कही गई है :

सदके उसको बुलाओ सदके सदके,
क्या आना तदके मर जाना जदके ॥

... ...

चारों वेदों का अर्थ यही है,
जप तप यम और बरत यही है,
छोड़ो कपाल अपना सद्‌गुरू पदके ॥

... ...

तुम होवो राजा तुमको आ जा मीटें,
कम करने से कम काजा मीटें,
क्यों घट में रहना घट वदके ॥

... ...

इनकी एक और कविता में श्रीकृष्ण के अवतार लेने का कारण स्पष्ट करते हुए वृषभान के द्वारा पूछे गए प्रश्न का नारद द्वारा इस प्रकार उत्तर दिया गया है :

जग में कृष्ण किस कारण आयो रे ॥

... ...

---

1 कश्मीरी भाषा में प्रेम-भक्ति सम्बन्धी कविता को 'लीला' कहते हैं ।

मग्न रहा बैठा परमात्मा,
बीच अपने कुछ भी नाहि जाना,
अपने आपको देखन आयो रे ।।

... ...

चित्त—आभास का बाधा होके,
कृष्ण आप ही आप राधा होके,
फिर गई माया, ना मोहन आयो रे ।।

... ...

'परमानन्द' विशयानन्द' होके,
मस्त रहे हस-रसके रोके,
आप अलेप आप लेपन आयो रे ।।

... ...

'परमानन्द' परम आनन्द होके,
अनाहद बाद योग नाद बन्ध होके ।

नित मुक्त होके नित बन्ध होके,
जग में कृष्ण उस कारण आयो रे ।।

... ...

रहस्यवादी भक्त कवियों की भांति परमानंद ने कई प्रतीकों से वेदांत तथा अन्य आध्यात्मिक उपदेश दिए हैं। वास्तव में प्रायः अपनी कविताओं में इन्हीं गूढ़ बातों का समावेश करके अपने पाठकों को मोह-निद्रा और अज्ञान से जागने का आदेश दिया है :

श्याम मुख सन्मुख दिखावे,
मेरा मन कैसा सुख पावे ।

इन्द्रिय-नगर का राजा इंद्र होवे,
मोह लंका का रामचन्द्र होवे ।।

कुम्भ कर्ण करने का जगावे,
देह द्वारका मन है कृष्ण जी ।
भोग इच्छा अठ पटरानी,
वख-वख लख घर विछावें ॥

जमने का जमुना पार तरे,
सतसंग गंग अश्नान करे,
न आवन तीर्थ तन न्हावे ॥
... ...

रहने क्या ना रहने का बेला,
है क्या यह एक दो दिन का मेला,
आयो अकेला फिर जायो अकेला ॥

श्रीकृष्ण की भक्ति में लिखी हुई उन की बहुप्रशंसित कविता के कुछ अंश यहां उद्धृत किए जाते हैं :

रूप तुम्हारा अच्छा पछाना,
तुम बिन कुछ नहीं काम ।
गोकल में श्रीकृष्ण हुआ हो,
अयोध्या में श्री राम ॥

वैरी तेरे कोई न होवे,
प्यारे तेरे और ।
हिंसा कंसा मारा तारा,
प्रेम ने सुदामा ॥
... ...

वृन्दावन में रास रचायो,
नाम पयो गोपाल ।
भोगी हो सब भोगां भोगे,
योगी हो निष्काम ॥
... ...

बाप हमारा कृष्ण हुआ हो,
पिता तुम्हारा नन्द ।
आपस में क्या पहुंचोंगा हम,
आप से दर दाम ॥

अंतिम चरण में अद्वैत का एक सुन्दर उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है। परमानंद कहता है "आप मेरे पिता हैं (परमानंद के पिता का नाम कृष्ण था) और आप का पिता नंद है (कवि का वास्तविक नाम नन्दराम था) अब आप ही बताइए हम दोनों का आपसी संवन्ध क्या है? इस का आप हिसाब लगाइए।"

परमानंद ने कर्मवाद पर बल देते हुए काफी रचनायें की हैं। उनके एक हिन्दी पद में कर्म संबन्धी विचार उल्लेखनीय हैं :

मात-पिता और सुत बंध-भ्राता,
जान लियो तुम दाता हो।
हाथ अपना है जी जगन्नाथा,
कृत-कृत्य प्रति पालन होयो ॥

तुम समझते हो कि माता-पिता, बच्चे अथवा मित्र तथा सम्बन्धी तुम्हारी सहायता करेंगे। यह भ्रम है तुम्हारा हाथ जगन्नाथ है (रक्षक है) तुम ने जो करना है सो करके स्वयं अपने पालक बनो। इस पद में हिन्दी के मुहावरे का यथावत् प्रयोग भी द्रष्टव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व के इस कश्मीरी-भाषी कवि ने अपनी मातृ-भाषा में रचित उत्कृष्ट कविताओं के अतिरिक्त कैसी मधुर हिन्दी में (जिसे परमानंद स्वयं 'भाखा' कहते थे) कविता की है।



हम पहले भी थे; और आगे भी होंगे। अतीत से भविष्य तक हम ने सब कुछ देखा है। हम शिव हैं, हमारे लिए जन्म-मरण का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा। जसे सूर्य के आने जाने का क्रम कभी टूटता नहीं। —लल्लेश्वरी

“जैन-साहित्य का निर्गुन साहित्य पर प्रभाव”



डा० शिवनन्दन कपूर



हिंसा, कर्म-काण्ड, एवं बहुदेववाद के विरोध में जो अवैदिक श्रमणधारा प्रवाहित बुई, उसे निर्ग्रन्थ या जैन धर्म की संज्ञा दी गई । इसके प्रवर्तक ऋषभदेव थे । उनका ऋग्वेद में तो उल्लेख है ही, यजुर्वेद में उन्हें धर्म-प्रवर्तकों में श्रेष्ठ बताया गया । 'जेकोबी' ने पार्श्वनाथ को ही जैन-धर्म का प्रवर्तक माना । किन्तु सर्वाधिक स्थापित वर्धमान महावीर को मिली । वे जिन आध्यात्मिक विजेता, कहे गये । इसी कारण उनके अनुयायी जैन कहलाये । २६वें तीर्थ कर महावीर जी अर्हन्त भी कहे गये ।

वर्धमान महावीर के द्वारा जैन-धर्म का पर्याप्त प्रचार हुआ । उनके श्रोताओं में मगधेश बिम्बसार, और अजातशत्रु से लेकर सामान्य जनता भी रहती थी । वैशाली, वज्यि मगध, मल्ल, कौशल, आदि गण-राज्यों में प्रसार होने पर भी इसे राजकीय प्रोत्साहन कम मिला । उत्तर भारत के अतिरिक्त, इस का प्रचार राजस्थान, गुजरात, मालवा, उड़ीसा, आंध्र-प्रदेश, कर्नाटक आदि में भी हुआ । उड़ीसा में उसे शैव-मत ने उखाड़ा । गुजरात में हेमचन्द्र के प्रभाव से सिद्धराज जयसिंह भी इसके प्रचार में सहायक बना । कुमारपाल ने भी इसे अंगीकृत किया था । दक्षिण में जैन-प्रचारकों ने संस्कृत-पाठशालायें खोल कर, उसके विकास में

अत्यधिक योग दिया। आज भी वहां बालकों को वर्णमाला के प्रारम्भ के पूर्व, जैनियों की नमस्कार-पद्धति "ओमु नमः सिद्धम्" का उच्चारण कराते हैं। ११वीं तथा १२वीं शताब्दी में कश्मीर, काशी, नदिया, तंजोर, कल्याण आदि इन के ज्ञान-दान के तीर्थ थे।

डा० अल्तेकर के मत से, एक समय दक्षिण की एक तिहाई जनता जैन थी। अकलंक, हरिभद्र, विद्यानंद, आदि विद्वानों के ग्रंथों से जैन-दर्शन चरमता पर पहुंच चुका था। अपभ्रंश-साहित्य की रचना, और सुरक्षा में भी उनका योग सर्वाधिक रहा। संस्कृत में ही नहीं, उन्होंने प्राकृत में भी अनेक ग्रंथ लिखे। काव्य, नाटक ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण. कोष, गणित. दर्शन, आदि पर अनेक अनुपक ग्रन्थ तेलुगु, तमिल, राजस्थानी, गुजराती, संस्कृत, आदि में लिखे गये।

दक्षिण में शासक ही नहीं, व्यापारी, तथा मध्यम वर्ग भी इसके सम्पर्क में में आया। दक्षिण में दिगम्बर, तथा गुजरात, एवं राजस्थान में श्वेताम्बर सम्प्रदायों की प्रमुखता रही। जैन उपदेशकों के चतुर्दान, अभय आहार, भैषज्य और शास्त्र ने जनता को आकर्षित किया। गंग नरेशों ने तो 'मान-स्तम्भ' स्थापित किये। सल्लेखना भोजन कम करते प्राण-त्याग भी प्रचलित हुई। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथम ने स्याद्वाद ही नहीं, कई बार अकिंचनता का व्रत भी अपनाया। आंध्र के शैवानुयायी राजाओं में भी जैन साधु तथा साध्वियों का प्रादुर्भाव होता रहा।

अणुवाद जीव और अजीव के आधार पर जगत के विकास का संकेंतक है। पुद्गले को ही 'डाल्टन' ने मैटर की संज्ञा दी थी। जेकोबी ने भारतीय दर्शन में अणुवाद का प्रादुर्भाव जैनियों से माना था।[1] आलवार भक्तों ने जैन-धर्म का विरोध करते हुए भी, उनके चदुर्दान को अपनाया था। दक्षिणी जैन-साहित्य में तो हिंसा न होने तक यज्ञों का भी विरोध नहीं है।

जैन-धर्म के अन्तर्गत पांच प्रतिज्ञायें अपेक्षित हैं—अस्तेय, अनासक्ति, ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषण. तथा अहिंसा। सम्यक् चारित्र्य, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् दर्शन इसके त्रिरत्न हैं। शंका रहित ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। सम्यक् दर्शन में धर्म एवं सप्त तत्वों पर आस्था प्रकट की जाती है। वे तत्व हैं—जीव, अजीव, आस्रव बन्ध. संवर, निर्जरा तथा मोक्ष। उपर्युक्त ५ प्रतिज्ञाओं तथा त्रिरत्नों का निर्गुण-साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

1—एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स, वा०-2, पृ०-199

जैन-धर्म में जीव स्वतः प्रकाश्य और चेतन, एवं अजीव जड़ है। दोनों के संयोग से प्रलय रहित अनादि विश्व का उद्भव हुआ है। अजीव के ५ प्रकार हैं—पुद्गल, काल, आकाश. धर्म तथा अधर्म। कर्म भूत तत्व है। विकार से ही कर्म की ओर उन्मुख होकर वह उससे आच्छादित हो जाता है। तभी वह 'बन्ध' युत होकर जन्म ग्रहण करता है। जीवोन्मुख कर्म-प्रवाह ही आस्रव कहलाता है। इसे रोकने की क्रिया संवर कही गई है। तप द्वारा कर्मों का अपनयन 'निर्जरा' है। तप से कर्मों की विमुक्ति ही जीव की मुक्ति है। अहिंसा, तप, अकिंचना या सम्पत्ति-त्याग आदि में जैन-धर्म की निष्ठा है। इनके अनुसार नारी को मुक्ति नहीं मिलती। जैन-धर्म के सिद्धान्त छठी शती में वलभी की महासभा में निश्चित किये गये थे। उनके धर्म-ग्रन्थों में ४६ आगम है, यथा. अंग, उपांग आदि।

एकात्म-भाव

जैन-साहित्य के जिन विचारों का निर्गुण-साहित्य पर प्रभाव पड़ा, उन में एकात्मभाव भी है। तदनुसार एक को जान लेना ही सब को जान लेना है। जो सब को जान लेता है, वह एक को भी अवश्य जानता है।[1] आचारांग सूत्र में इसी विचार का अनुमोदन करते लिखा गया है, सभी आत्मायें समान हैं। अपने-पराये का भेद नहीं है। फिर मैं किस की समाधि लगाऊं? किस की अर्चना करूं? स्पर्श-अस्पर्श से किस का त्याग करणीय है? किस मैत्री अथवा विरोध करूं? जिधर की दृष्टि जाती है, वही आत्मा व्याप्त है।[2] कबीर ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं।[3] भीखा साहब ने इसे जल, कनक और मृत्तिका की मूल भूत एकता के रूप में अंकित किया है।[4] और तो और वर्तमान में महादेवी ने भी क्या पूजा क्या अर्चन रे में उन्हीं भावों की पुनरावृत्ति की है।

1—जे एंग जाणइ से सव्वं जाणइ। जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ॥ आचारंग सूत्र 3/4

2—को 1 सुसमाहि करउं को अंचउं, छोपु अछोपु करिवि को वंचउं।

3—हल सहि कलहू केण समाणउ, जहिं कहिंजोवउं तहिं उप्पाणउं॥ योगिन्दु मुनि, जब मैं आतम तत्त-विचारा। योगासार दोहा 40

व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी॥
राणा राव कवन सों कहिये, कवन वैद को रोगी॥
इनमें आप, आप सबहिन मैं, आप आप सूं खेले।
नाना भांति घड़े सब भांड़े, रूप धरे धरि मेलै॥

4—जहां तक समुदं दरियाव जल कूप है, लहरि अरु बुंद को पानी।
एकं सुवर्न को भयो गहना बहुत देखु वीचार हेम खानी॥
पिरथवी आदि घट रच्यो बहुत, मिंतिका एक खुद भूमि जानि।
भीखा एक आतमा रूप बहुत भयो, बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी॥

अहिंसा

जैन-धर्म के जिस सिद्धांत का सर्वाधिक प्रभाव निर्गुण विचार-धारा पर अंकित हुआ वह अहिंसा का है। हिंसात्मक यज्ञों के विरुद्ध, वर्धमान की 'देशना' थी, मित्ती में सव्व भूस्सु, मेरा सभी जीवों से मैत्र भाव है। जैन-धर्म के प्रमुख पर्व संवत्सरी या पर्युषणा में प्रतिक्रमण कर पश्चाताप किया जाता है। तत्पश्चात् सभी जीवों से क्षमा-याचना सहिता मैत्री की उद्घोषणा होती है।[1] हिंसा के सक्रिय तथा प्रेरणात्मक दोनों रूपों की उन्होंने वर्जना की। हिंसा ज्ञात या अज्ञात किसी भी रूप में न हो।[2] सभी प्राणयों में जीवन-मोह है। सभी सुख एवं जिजीविषा से मुक्त है।[3]

उत्तराध्ययन सूत्र में अहिंसा की व्याख्या करते कहा गया हैं, अनुकूल अथवा प्रतिकूल सभी जीवों के साथ सम्भाव रखना ही अहिंसा या प्राणातिपात-वियति है।[4] निर्गुनियों में कबीर ने अहिंसा के सिद्धांत को प्रमुखता दी। 'हलाल' करने वाले मुसलमानों तथा झटका मारने वाले हिन्दुओं दोनों की उन्होंने निन्दा की। अहिंसा की चरमता पर ही उन्होंने पत्ती तोड़ने में भी जीव-हिंसा के दर्शन किये।[5] अहिंसक के नाते ही वे शाक्तनिंदक हैं।[6] जैन-धर्म में सक्रिय अहिंसा होने से, उसके अनुयायी सूर्यास्त से पूर्व भोजन, जल छान कर पीने, मुख पर पट्टी बांधने आदि की क्रियायें करते हैं।

वाह्याडंबरों का विरोध

ब्राह्मण पौरोहित्य के विरोध में कर्मकाण्ड के आडंबर के प्रतिकूल वर्धमान महावीर ने क्रान्ति की थी। उनका कथन था, केवल शिर-मुंडन से कोई 'श्रमण' नहीं बन जाता। ओंकार के उच्चारण से ही कोई ब्राह्मण नहीं कहा जायेगा।

1—खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, बेरं मज्झ ण केणई॥

2—जावन्ति लोगे पाणा तसा आदुवा थवरा। जाणमजांश वा न हणे नो विधाय ए॥
दशवकालिक, 6/10।

3—सव्व पाणा पियाउया, सुहसाया दुकखपडिकूला अप्पियवहा।
पियजीणो जाविडकामा, सव्वेसिजीवियं पियं। आचारांग सूत्रे, 1.2.3

4—समया सव्वभूएसु समुमित्तेसु वा जगे। पाणाइवायविरई जावज्जापाए दुक्करं॥
उत्तराध्ययन सूत्र, 19-25

5—बकरी पाती खात है ताकि काढ़ी खाल। जो बकरी खात है ताको कौन हवाल॥

6—वैष्णव की कुटिया भली, ना साकत बड़ गांव॥

अरण्य-वास से ही मनुज मुनि की संज्ञा नहीं पा सकता ।[1] मुनि रामसिंह ने पाहुड दोहा, दोहा-उपहार में चित्त मूंडने को ही महत्व दिया । जिसने चित्त नहीं मूंड उसका शिर-मुंडन व्यर्थ है ।[2] उन्होंने तीर्थ-भ्रमण, मंदिर-गमन आदि को भी निस्सार बताया ।[3] जैन-धर्म के अनुसार मानव समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, मनन से मुनि और तप से तापस होता है ।[4]

कबीर ने भी, साधन-हेतु आडंबर को अनावश्यक बताया । यदि मन पक्व नहीं है, तो जप, माला आदि बेकार है ।[5] काठ की माला में अनेक उलझनें हैं । माला तो गांठ, रहित, सन्सांस, तथा मन की ही भली है ।[6] नंगे घूमने से मुक्ति मिलती, तो बन में वसनहीन विचरने वाले मृग परम मुक्त होते । मूंड मुंडाना मोक्ष-प्राप्ति में सहायक होता तो भेड़ सीधे स्वर्ग चली जाती ।[7] अतः केश न बिगाड़ कर मन मूंड़ें ।[8] सद्भाव मुख्य है । फिर केश लम्बे रखे या मूड़े कोई अंतर नहीं पड़ता ।[9] केशों ने क्या अपराध किया है ?

गुरु की महिमा

जैन-धर्म में ५ परमेष्ठी रूपों में ५ गुरुओं की योजना है । वह आत्मा की रहस्य प्राप्ति में सहायक हैं । ब्रह्म और उसमें समानता मानी गई है । महचंद लिखित 'दोहा पाहुडे' में कहा है, रत्न त्रय दर्शन, ज्ञान, चरित्र का तत्व रूप गुरु

1—न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो ॥

2—मुंडिय मुंडिय मुंडिया । सिरु मुंडिय चित्तु न मुंडिया ।
चित्तहं मुंडणु जि कियउ । संसारहं खंडणु ति किउ ॥ पाहुड दोहा 135

3—पाहुड दोहा 161—168

4—समयाए समणो होइ, बंभचरेण बंभणो ।
णाणेण उ मुणी होइ तवेण होइ तावसी ॥ उत्तराध्ययन सूत्र, 25-32

5—जप माला छापा तिलक सरै न एको काम । मन कांचै वृथा सांचे रांचे राम । कबीर

6—कबिरा माला काठ की, बहुत जतन का फेरा ।
माला सांस उसांस की, जामें गांठ न मेरा ।

7—नांगे फिरे जोग जो होई, बन का मिरग मुकुति गया कोई ।
मूंड़ मुंड़ाये जो सिधी होई, सरग ही भेंड़ न पहुंची कोई ॥

8—केसों कहा बिगाड़िये, जै मूंड़े सौ बार,
मन कौं काहे न मूंड़िये, जामैं विषय विकार ॥

9—साईं सेती सांच चलि, औरां सूं सुध भाई ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुंड़ाई ॥

हैं। वही जिन रूप, सिद्ध और महादेव है । आत्म, और पर के रहस्य का उद्घाटक है। उसी की कृपा से भव-सागर संतरण संभव है।[1]

मध्ययुगीन सभी संतों ने गुरु-महिमा का उल्लेख किया। कबीर ने उसे गोबिन्द से भी महान् बताया।[2] पर साथ ही कहा, यदि गुरु महान् नहीं है तो शिष्य भी पतन के गर्त में जा पड़ेगा।[3] ऐसा गुरु भी सहज नहीं है। उसके लिये भी ईश्वरीय कृपा अपेक्षिता है।[4] मीरा ने उसकी महिमा गाई। नानक ने उसे अलख का दर्शन कराने में समर्थ माना। उनकी दृष्टि में तो गुरु शिक्षा मेधा के मध्य माणिक तुल्य प्रकाश करने वाली है।[5]

ईश्वर और चरित्र

जैन दर्शन में परमात्मा के लिये ईश्वर शब्द का प्रयोग न कर, सिद्ध, बुद्ध, पारगत, अजर, अमर, असंग, बंधन-विमुक्त आदि नाम दिए। वैसे उनके राम 'दशरथ-पुत्र न होकर, परम-ब्रह्म हैं। इसी लिये तो कहा, "राम नाम का मरम है आना।

वर्धमान महाबीर ने कर्म की अपेक्षा चरित्र पर बल दिया। जैसे जला बीज अंकुरित नहीं होता, वैसे ही तप से दग्ध कर्म-बीज वाला मानव भी मुक्ति पा जाता है।[6] आचारांग-सूत्र में उन्होंने धर्म के दो पक्ष बताये—श्रुत अथवा ज्ञान, तथा चारित्रय। महाबीर ने त्याग और तप पर तथा पार्श्वनाथ जी ने असत्यत्याग पर बल दिया। पांच महाव्रतों की योजना की गई। वे ये हैं—अहिंसा, सत्य, अचार्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये योगांग यम से समानता रखते हैं। श्री महाबीर ने दश वैकालिक सूत्र में कहा है, क्रोध प्रेम का नाश करता है। मान विनय का तथा लोभ सभी सद्गुणों का विनाशक है। शांति से क्रोध को, मृदुता से मान को,

---

1—गुरु जिणवरु गुरु सिद्ध सिउ गुरु रयणत्तय सारु।
सो दरिसावइ अप्पउ, आणंदा, भव जल पावइ पारु॥ 36॥

2—गुरु गोबिंद दोउ खड़े काके लागु पांय। बलिहारी गुरु आपनो जिन गोबिंद दिया बताई॥

3—जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधै अंधा ठेलिया, दुन्यू कूप पंडत॥

4—ग्यान प्रकाश्या गुरु मिला, सो जिन बीसरि जाय।
जब गोविंद कृपा करी, तब गुरु मिलिया आई॥

5—मति बिच रत्न जवाहर माणिक जो इक गुरु की सिख सुणी, ग्रंथ साहब॥

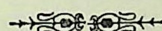
6—दग्धे बीजे यथात्यन्तं, प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहिति भवांकुरः॥

सरलता से माया को, एवं संतोष से लोभ को जीते ।[1] विवेक के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन सूत्र का कथन है, प्रमाद अनर्थ-मूल होने से त्याज्य है ।

कबीर ने ज्ञानाग्नि लगने पर वासना के सागर के भस्म होने, तथा नव सृष्टि में वैराग्य, विवेक, करुणा आदि पक्षियों के आने का वर्णन किया है ?[2] निवेर, निकामता, प्रभु-भक्ति, विषयों से निर्लिप्तता आदि संतों के लक्षण है ।[3] इस के साथ ही ज्ञान की अपेक्षा, प्रेम, एवं समवेदना अपेक्षित है ।[4] ऊंचे कुल में जन्म लेने से नहीं, कर्मों से मनुष्य ऊंचा होता है । सोने के कलश में भी छलकती मदिरा की साधु-जन निंदा ही करते आये ।[5] दया के महत्व की ओर तुलसी ने भी इंगित किया है ।[6]

अनित्यिता

'आचारांग सूत्र' में अनित्यि भावना का उल्लेख है । धीर व्यक्ति आलस्य न करे । यौवन जा रहा हैं । रात्रियां भाग रही हैं । भोग रही हैं । भोग अनित्य हैं । वे मनुज को वैसे ही छोड़ देते हैं, जैसे फलहीन वृक्ष का त्याग पक्षी कर देते हैं ।[7] कबीर ने भी 'कांचे कुम्भ' 'पानी केरा बुलबुला' 'परभात का तारा', आदि के उदाहरणों द्वारा मानव-जीवन की नश्वरता सिद्ध की है ।[8]



1—दशवैकालिक सूत्र, 8।38,39

2—दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ ।
दाधी देह न पालवै, सतगुरु गया लगाइ ॥

3—निरवैरी, निह-कामता, साइ सेती नेह ।
विषिया सूं न्यारा रहै, ए संतनि का अंग एह ॥

4—कबीर पढ़िबा दूरि करि। आथि पढ्या संसार ।
पीड़ न उपजी प्रीति सूं, तौ क्यूं करि करै पुकार ॥

5—ऊंचे कुल का जनमिया, करनी ऊंच न होय ।
स्वर्ण कलस मदिरा भरा, साधू निन्दै सोय ॥

6—लोभ पाप को मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान ॥

7—आचारांग सूत्र, 1 । 2 । 1 । 10-22

8—कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल ।
कबीर प्याले प्रेम का, भरि भरि पिवै रसाल ॥
तथा,
पानी केरा बुलबुला अस मानस की जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा प्रभात ॥

जम्मू शूरवीर तथा कलाप्रेमी लोगों की धरती



सूरज सराफ



जम्मू डोगरों का प्रदेश है जिन्होंने न सिर्फ भारत में वरन् विदेशों में भी अपनी सैन्य वीरता की धाक बिठाई है। वीर लोगों की धरती होने के अतिरिक्त प्रकृति ने जम्मू को अत्याधिक सौंदर्य भी प्रदान किया है. इसकी हरी भरी छोटी छोटी घाटियां, कल कल करते निर्जर गगनचुम्बी पर्वत और उनकी ढलवानों पर विस्तीर्ण अन्तहीर्ण घने हरित अरण्य; उन में चलती सांय सांय करती स्वास्थ्य दायिनी स्वच्छ वायु और उन से नीचे आती हुई कूदती फांदती नदियां, नाले तथा जल-प्रपात, यह सब किसी भी पर्यटक का मन मोह लेने के लिये पर्याप्त हैं। डुग्गर के विख्यात तथा स्वास्थवर्धक स्थल हैं—सन्नासर, जाई, स्योज, बनी, सरथल, ढग्गर, डुड्डु बसन्तगढ़ तथा लोरन की चारागाहें—भद्रवाह, किश्तवाड़, सुरंगकोट, कुद्द, बटोत, बनिहाल । नूरीछम्ब आदि के स्थान—मानसर, सरूईंसर तथा कैलाश की नीलाभ झीलें।

सोने पर सुहागा है यहां के लोग जो लोक-नृत्यों लोग-गीतों तथा मेलों के इतने शौकीन हैं कि यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि कोई ऐसा दिन नहीं होता जब कि डुग्गर के किसी न किसी भाग में कोई न कोई मेला न होता हो। प्रत्येक मेले के आवश्यक अंग होते हैं सुन्दर लोक-नृत्य तथा मन भाते

सुरीले लोक-गीत। लोक-गीत वास्तव में डोगरों की शानदार परम्परागत निधि हैं क्योंकि इन्हीं से उनके इतिहास का, उनके चरित्र का, उनकी परम्पराओं का, प्रथाओं का तथा भावों का पता चलता है। भारत की लोक संस्कृति में डोगरी लोकगीतों का ऊंचा स्थान है।

डोगरा प्रदेश के भिन्न भिन्न भागों के लोक-नृत्य भी भिन्न भिन्न हैं क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र का नृत्य वहां के वातावरण के अनुसार होता है। उच्च पर्वतों के नृत्य मैदानी क्षेत्रों से पृथक हैं. नगरों के नृत्य गांवों से भिन्न हैं फिर भी डुग्गर का सब से अधिक प्रसिद्ध और सुन्दर नृत्य है 'कुड्ड' यह गद्दी नृत्य साधारणतया ऊंचे पर्वतीय शेत्रों में, आग के बड़े बड़े अलाव जलाकर उनके इर्द-गिर्द सारी रात नृत्य किया जाता है। यह नृत्य बरसात के महीनों में नित्य ही किसी न किसी गांव में स्थानीय देवी देवताओं के सम्मान में आयोजित किया जाता है। इसके अतिरिक्त कोई भी हर्ष का अवसर इस नृत्य के रसिकों को नचाने के लिये पर्याप्त होता है।

डुग्गर जीवन की झलकियों में यहां की पहाड़ी यात्राओं का भी बहुत महत्व है। जम्मू के लगभग प्रत्येक भाग में एसी यात्राय होती हैं, परन्तु चार प्रसिद्ध पर्वतीय यात्रायें; जहां भारत भर के अन्य भागों से भी बहुत लोग आते हैं, वह हैं वैष्णवी देवी, सुकराला देवी, सुद्धमहादेव तथा कैलाश झील की यात्रा। इन यात्राओं को जाने वाले श्रद्धालु तथा पर्यटक, प्रकृति के मनमोहक दृष्यों से आनन्दित होते हैं और साथ ही उन्हें मन की शान्ति भी प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त कुछ स्थानीय महत्व की भी पहाड़ी यात्रायें हैं जैसे शिवखोड़ी की गुफा, पिंघला देवी की गुफा, बुड्डा अमरनाथ, सरथल देवी आदि।

डोगरों ने कला में भी बहुत नाम उत्पन्न किया है। संसार का कौनसा बड़ा संग्रहालय ऐसा होगा जहां बसोहली की चित्रकला की उत्कृष्ट कला कृतियां बड़े सम्मान पूर्वक न रखी गई हों। इनके अतिरिक्त जम्मू प्रांत के विभिन्न भागों में प्राचीन मन्दिरों अथवा पुरातन दुर्गों तथा राजभवनों में अंकित भित्ति चित्र भी दर्शनीय हैं।

डुग्गर देश के अनेक भागों में निर्मित सहस्त्रों वर्ष पुराने पाषाण मन्दिर तथा उन पर बहुसंख्या में बनी मूर्तियां भी पुरातन काल से ही डोगरों के कलाप्रेम की प्रतीक हैं। इनमें प्रसिद्ध देवालय हैं:—बबोर, बिलावर, क्रम्ची आदि। डुग्गर देश की राजधानी जम्मू नगर को 'मन्दिरों का नगर' भी कहा जाता है जहां सैंकड़ों की संख्या में मन्दिर हैं, जो कि यद्यपि बहुत प्राचीन तो नहीं परन्तु बहुत भव्य एवं विशाल हैं। इन में सत्तारह मन्दिरों का एक समूह रघुनाथ मन्दिर के नाम से उत्तरी भारत का अति विख्यात देवालय है।

स्थान स्थान पर बने हुए बड़े बड़े प्राचीन महल तथा दुर्ग—भग्नावस्था में, डोगरों के इतिहास के साक्षी हैं और बड़े गौरव से शीश उठाये इस भांति खड़े हैं मानो वह जम्मू के भिन्न-भिन्न भागों के रक्षक हों।

डोगरों का कला प्रेम उनकी दस्तकारियों में भी झलकता है जैसे कि डोगरा रूमाल जिन पर कढाई द्वारा चित्र बनाये जाते हैं, छपाईदार चादरें, चटकीले रंगों वाली सींको द्वारा निर्मित विभिन्न वस्तुयें जैसे नाना प्रकार की टोकरियां, चटाईयां तथा पंखे, बांस निर्मित वस्तुयें इत्यादि।

डोगरी चरित्र की एक प्रशंसनीय तथा आकर्षक झांकी है यहां के विभिन्न धर्मावलम्बियों की एकता तथा मेल मिलाप। जम्मू के विभिन्न भागों में मुसलमान पीरों के कई प्राचीन स्मारक बने हैं जहां पर हिन्दू भी मनौतियां करने जाते हैं और वहां पर होने वाले उरसों पर भी सहस्त्रों की संख्या में सम्मिलित होते हैं जहां डोगरों की इस धरती में प्रकृति ने मुक्त हृदय से अपना सौंदर्य बिखेरा है— वहां यहां के कला-प्रेमी लोगों ने अपने हाथों से उस सुन्दरता को और भी निखारा है और अपनी निडरता तथा वीरतापूर्ण कार्यों से इस भूमि को चार चांद लगाये हैं।

डुग्गर देश जम्मू-कश्मीर राज्य का दक्षिण भाग है जिसकी जनसंख्या लगभग सोलह लाख है और क्षेत्रफल लगभग १६००० वर्गमील है। इसका काफी भाग पाकिस्तान तथा तथा कथित 'आज़ाद कश्मीर' से मिलता है। एक ओर वह पंजाब से मिलता है और दूसरी ओर वह कश्मीर तक फैलता चला गया है। उत्तर पूर्व में वह हिमाचल प्रदेश से लगता है जिस से कि यहां के लोग संस्कृति तथा भाषा आदि के सम्बन्ध में सर्वथा मिलते हैं। दक्षिण तथा उत्तर पश्चिम में पंजाब तथा पाकिस्तान से मिलती हुई कुछ मील चौड़ी पट्टी को छोड़ कर जम्मू का सम्पूर्ण क्षेत्र छोटे बड़े पर्वतों से भरा पड़ा है जो कि डेढ़, दो हज़ार फुट से लेकर सोलह सत्तराह हज़ार फुट तक ऊंचे हैं।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार डोगरों का इतिहास तीन हज़ार साल से भी प्राचीन है तथा इतनी ही प्राचीन उनकी भाषा डोगरी भी है। परन्तु अभी शोध कर्त्ताओं में इस बात पर पर्याप्त मतभेद है कि शब्द 'डोगरा' कहां से आया। कुछ अनुसंधान-कर्त्ताओं का विचार है कि यह शब्द 'द्विगर्त' से बना है जिसका अर्थ है दो गढ़हे और जिनका तात्पर्य मानसर तथा सरूईंसर की झीलों से है। एक लब्धवर्ण वेदांती के अनुसार शब्द द्विगर्त का अर्थ है त्रिकूटा पर्वत (जिसके अंचल में वैष्णवी देवी की प्रसिद्ध गुफा स्थित है) की तीन ऊंची ऊंची चोटियों के मध्य बने हुए दो गड्डे। कुछ और इतिहासकारों के अनुसार शब्द 'डुग्गर' डोंगरा शब्द से निकला है, इस प्रकार डोगरों का सम्बन्ध राजस्थान से बताया जाता है।



साहित्यकार

★
बी० डी० हंस
★

युग मोड़ देने की अहमियत रखने वाले कलाकार को साहित्यकार कहते हैं। साहित्य का इतिहास साक्षी है। भारतीय साहित्य के आधुनिक साहित्यकार इसका उदाहरण हैं। उन्होंने गुलाम-युग को मोड़कर ठीक विपरीति की दिशा में रख दिया। उनके साहित्य ने भारत को स्वतन्त्रता दी। वे सच्चे साहित्यकार हैं। उनके दिल-दिमाग में युग मोड़ने की क्षमता है। वे धन्यवाद के पात्र हैं। परन्तु जिस स्वतन्त्रता को हमारे आधुनिक साहित्यकारों ने विरासत के रूप में नवीन खेमे के साहित्यकारों को प्रदान की है, वे इसकी रक्षा कर सकते हैं, इसमें संदेह किया जाना असम्भव नहीं।

विश्व-साहित्य के चिन्तन तथा मनन करने पर प्रतीत होता है कि समस्त भू-खण्ड का साहित्य उसके समग्र जीवन का प्रतिबिम्ब है। विश्व की किसी जाति तथा समाज में आचार-विचारों में परिवर्तन अथवा भिन्नता दिखाई देती है; किन्तु तत्त्वः सम्पूर्ण मानवता एक है। उसके विचारों का मूल-स्थल समान है। उसकी अनुभूतियों की भूख-प्यास एक है। उसका सुख-दुःख तथा आंसू-मुस्कान एक होने के कारण उसकी समस्त जगतियों की साहित्यिक विचार-धाराओं में अनेकता होते हुए भी एकता है। जड़-भौतिक वादी साहित्य भी मानम-जीवन की विवेचना सत्यं-शिवं-सुन्दरं के आधार पर स्वीकार करता है। साहित्य का मंगलकारी स्वरूप मानव-जीवन के उत्थान का उतरदायित्व ग्रहण करता है। विश्व-साहित्य की

अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि संसार के अनेकों परिवर्तनों में साहित्यकारों का अधिक सहयोग रहा है। यदि यह कहा जाय कि मानव-समाज के हर परिवर्तन का श्रेय साहित्यकारों को प्राप्त है, तो अनुचित नहीं कहा जा सकता। अतः मानव-समाज के उत्थान पतन के उतरदायित्व से साहित्यकार इन्कार नहीं कर सकता।

साहित्य दर्शन का अभिन्न अंग है। दर्शन जीव-जगत का तात्त्विक विश्लेषण है। साहित्य जीव-जगत की क्रिया-प्रक्रियाओं एवं उस से उत्पन्न होने वाले प्रतिफल की सरस तथा रोचक व्याख्या है। हर साहित्यकार को यह स्वीकार करना होगा कि वह मानव-समाज की स्वयं एक इकाई है। उसे अपने चारों ओर बिखरे हुए विषय अथवा जगत को भी स्वीकार करना होगा। इस असीमित जगत से उसका क्या सम्बन्ध है, इसे वह भुला नहीं सकता। जिस मानव-समाज की वह स्वयं एक इकाई है, उसके उत्थान-पतन के सामूहिक उत्तरदायित्व से इन्कार नहीं कर सकता। साहित्यकार की कला ही उत्थान-पतन का कारण होती है। जो साहित्यकार कला को जीवन के लिए स्वीकार नहीं करता, वह साहित्यकार अपने कन्धों पर दौड़ लगाता है। उसकी कला, उसका जीवन तथा जीवन की क्रिया-प्रक्रिया उसके स्वयं के लिए कल्याण प्रद हो सकती है. परन्तु समाज का कोई कल्याण नहीं कर सकती।

हर कलाकार 'कुछ' कहना चाहता है। समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए उसका वह 'कुछ' ही अमृत है। साहित्यकार अपने उस 'कुछ' को व्यक्त करने के लिए कला का सहारा लेता हैं। कला उसके कुछ का माध्यम है। वह इसी लिये कविता, कहानी, उपन्यास. नाटक, चित्र, नृत्य तथा संगीत आदि समाज के रंग मंच पर प्रस्तुत करता हैं। कला जीवन है मृत्यु नहीं; कला अमृत है विष नहीं। इस लिए कलाकार का जीवन अमृत का शाश्वत-सरोवर है। वह अमृत का प्रतीक होने के कारण. मानव-समाज को अमृत बांटता है वह सत्यं-शिवं-सुन्दरं का अवतार स्वयं शिव हैं। महान योगी भी कलाकार है। उसकी कला, उसकी साधना की संतान है। वह अजर-अमर है। कलाकार का अध्ययन, चिंतन, मनन तथा अभ्यास ही साधना है। साधना हीन साहित्य अथवा कला का जन्म असम्भव है। उसे साहित्य या कला का नाम नहीं दिया जा सकता। कला अपने में पूर्ण होने के पश्चात ही प्रकट होती है। कला प्रकट होती है—व्यक्त होती है, इस लिए कला, कला के लिए उस समय तक है, जब तक वह प्रकट अथवा व्यक्त नहीं होती। प्रकट अथवा व्यक्त होने पर कला जीवन के लिए स्वयं हो जाती हैं। कला का वह रूप जिसे पूर्व-प्रकट या अव्यक्त-स्वरूप कह सकते हैं, कलाकार की स्वयं की मोक्ष अथवा आनन्द का कारण बन सकता हैं। परन्तु मानव-समाज की मुक्ति और आनन्द तो उसके व्यक्त स्वरूप में ही निहित है। उसका व्यक्त-रूप जीवन के लिए है।

साहित्य समाज के कल्याण का साधन तो है ही, यह मनोरंजन का माध्यम भी हैं। परन्तु उसके मनोरंजन को उद्देश्य हीन नहीं कहा जा सकता। यदि साहित्य का मंगलकारी रूप कहीं भी अपने उद्देश्य को छोड़ देता है, तो उसे साहित्य नहीं कहा जा सकता। उसे कला कहना कला का अपमान है। यह सत्य है कि विनाश का स्थान भी कला के चरणों में निहित है। परन्तु उसका विनाश भी मंगलकारी होता है। कलाकार स्वयं शिव है। सृजन और विनाश उसकी इच्छा है। वह प्रलय-नृत्य सृजन-नृत्य का जनक है। वह युगाधार भी है और कर्णधार भी। युग मोड़ देने की शक्ति का महासागर होने के कारण वह युग परिवर्तक है। कला समाज का रंजन करती है। मानव-समाज के मनोरंन के लिए जो सामग्री साहित्य प्रदान करता है— वह उसकी अभिव्यक्ति की कला है जो अपने में पूर्ण होती है। दुर्भाग्य से विश्व का कलाकार धर्महीनता का शिकार हो गया है जिस से आधुनिक युग के साहित्यकारों को 'विकृत-युग' का जन्म दाता कहा जा सकता है। विश्व का मनोरंजन-साहित्य जिस विकृत-युग को जन्म दे रहा है वह साहित्यकारों के लिए चिनौती है।

धर्म धारण तथा अनुशासन का अपर नाम है। अनुशासनहीन व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। धर्महीन समाज कभी जीवित नहीं रह सकता। धर्म एक व्यवस्था है—किसी-न-किसी व्यवस्था को स्वीकार करना होगा। यह भी हो सकता है कि समाज की नवीन रूप रेखा किसी साहित्यकार के विचारों में हो तो दिशा हीनता कहा जा सकता है क्योंकि वह अपनी धारणा को स्वीकार करता है। साम्यवाद स्वयं एक व्यवस्था है, अनुशासन है—धर्म है। आज हमारे साहित्य और साहित्यकार ने विश्व-समाज को कहां लाकर खड़ा कर दिया है यह एक विचारणीय प्रश्न है। आज विश्व की अनेकों गलियों में सड़क और चौराहों पर नंगा-नाच हो रहा है। हर हाट-बाट-चौराहे पर अनेकों मुद्राओं में सम्भोग के दृश्य दिखाई देते हैं। सामूहिक-सम्भोग अभिशाप बनता जा रहा है। मर्यादा हीन सम्भोग किस समाज की रचना कर रहा है, यह बात नहीं है—वह समाज को ही स्वीकार नहीं कर रहा। विश्व के अनेकों देशों की समाज आज इसी रोग से पीड़ित हैं। भारतीय-समाज में भी यह रोग फैलने का प्रयास कर रहा है। यह अनुशासनहीन काम मानव-समाज के लिए घिनौना और नापाक माहोल पैदा कर रहा है। मानव-समाज के इस विकृत स्वरूप का उत्तर दायित्व विश्व के आधुनिक साहित्य और साहित्यकार पर है। साहित्य का मनोरंजनकारी रूप विकृत और दिशाहीन होने के कारण, आज अनेकों देशों में नंगी-सभ्यता का विकास हो रहा है। वहां घरों में युवतियों ने नितान्त वस्त्रहीन रहना पसन्द किया है। आप इस विचित्र-सभ्यता के जन्म से इन्कार नहीं कर सकते। जिन देशों में इस नंगी-सभ्यता का विकास हो रहा है, उनके सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक नेता

अत्यन्त दुःख का अनुभव कर रहे हैं, यही बात नहीं हैं—अधिकांश मां-बाप अपनी युवा पुत्री और पुत्र को, अपनी स्वयं की आंखों से घर के हर कार्य में हर जगह नितान्त नंग्नि देखकर हैरान हैं। मां-बाप के कठोर दण्ड का भी उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता। यह नंगी-सभ्यता स्वतन्त्रता के नाम पर नंगा नाच कर रही हैं। यह नंगी-सभ्यता, आधुनिक साहित्य के विकास का अन्तिम लक्ष्य है—आधुनिक विकास की सुघर-कंचनी की सन्तान, यह नंगी तस्वीर हर जगह दिखाई दे रही है। इसका उत्तरदायित्व साहित्य और साहित्यकार के ऊपर है। नंगी तस्वीर साहित्य की सन्तान है! आधुनिक कला के विकास की औलाद "नंगा-नाच" कलाकार का स्वागत कर रहा है अथवा अपमान, कहा नहीं जा सकता।

संसार में प्रायः हर व्यक्ति को यह कहते देखा जा सकता है कि आधुनिक चलचित्र-साहित्य दोष पूर्ण है; वर्तमान पीढ़ी पर उसका कु-प्रभाव पड़ रहा है। मानव-समाज का हर समझदार व्यक्ति फिल्म देखने का विरोध कर रहा है। इस दोष का उत्तरदायित्व किस पर है? क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि विश्व का हर समझदार व्यक्ति साहित्यकार तथा कलाकार से नफरत कर रहा है? आज का साहित्यकार यह कह कर बचना चाहता है कि साहित्य और कला के नाम पर अ-साहित्यकार और अ-कलाकार अपने स्वार्थ के लिए अश्लील साहित्य और विनौनी कला का प्रसार कर रहे हैं। यह तर्क उनकी कमजोरी का प्रतीक है। यह कह कर साहित्यकार अपने उत्तरदायित्व से इस प्रकार इन्कार करना चाहता है, जिस प्रकार कमज़ोर शासन शत्रु के आक्रमण होने पर अपने दायित्व से मुकर जाता है। यदि अश्लील-साहित्य कलाविहीन कला के प्रसार-प्रचार में सफल हो जाता है तो, क्या यह साहित्यकार अथवा कलाकार की बहुत बड़ी पराजय नहीं है? आज तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो साहित्यकार कलाहीन साहित्य का दया का पात्र बनकर जीवन-यापन कर रहा हो। चलचित्र की कहानी, गीत, संगीत तथा नृत्य आदि सब ही तो साहित्य के अंग हैं—समाज क्यों चित्रों से घृणा कर रहा है? क्यों समाज पर कुप्रभाव पड़ रहा है? इसका उत्तर आलोचक के पास हो सकता है, परन्तु विश्व का आलोचना-साहित्य इतना कमज़ोर है कि वह अपनी कमज़ोरी को छिपाने के लिए शासन को दोषी ठहराता है। वह अपने ऊपर शासन के अधिकार को स्वीकार करता है। खेद है कि आज के साहित्यकार ने शासन को अपना स्वामी मान लिया है; जबकि सत्य यह है, शासन सदैव साहित्यकार का गुलाम होता है। साहित्य ही तो शासन का निर्माण करता है।

मेरे एक आलोचक मित्र ने मुझे पत्र लिखकर पूछा है कि क्या साहित्य पर सेंसर होता है? साहित्य का सेंसर तो आलोचना-साहित्य है। एक

वास्तविक आलोचक सच्चा और ईमानदार न्यायाधीश होता है—फिर चलचित्र जगत पर सेंसर, क्या इस तत्त्व का प्रतीक नहीं है कि इस दुनिया का साहित्य और कला से कोई सम्बन्ध नहीं है ? चलचित्र जगत पर सेंसर इसलिए है कि इस दुनिया में रहने वालों का कोई दीन-ईमान नहीं है। शासन यह सोचता है।

जहां तक मैं समझता हूं, मेरे मित्र के कहने का अभिप्राय यह है कि जब चलचित्र-जगत का हर पात्र साहित्यकार अथवा कलाकार है, तो वह अपने ऊपर सेंसर को क्यों स्वीकार करता है। उसने इसे स्वीकार किया है। जब कहानीकार की कहानी का हर पात्र अपने में पूर्ण है। उसकी आख्यायिका का हर पहलू सत्यं-शिवं-सुन्दरं की झांकी है, तो वह अपनी कहानी बधिक के हाथों में कभी नहीं सौंप सकता। जब चित्रकार, संगीतकार तथा नृत्यकार को अपनी कला पर गर्व है, वह उनकी साधना की सन्तान है, तो वे अपनी संतान को शिकारी के हवाले नहीं कर सकते। परन्तु सत्य यह है कि बधिक एवं शिकारी के हवाले कला की कमजोरी कहा जा सकता है। परन्तु देखना यह है कि क्या इस-जगत का कहानीकार एवं अन्य पात्र कलाकार हैं भी अथवा नहीं। यदि हैं, तो कुप्रभाव का प्रश्न ही पैदा नही होता। कोई भी समझदार व्यक्ति फिल्म देखने को गुनाह नहीं कहता। कुछ न कुछ उन कलाकारों में अथवा उनकी कला में कमी है—शासन को उनकी कला पर विश्वास नहीं, उनके साहित्य पर यकीन नहीं। इसीलिए शासन चलचित्र-जगत पर सेंसर रखता है। परन्तु खेद है कि संसार के अनेकों देशों में, शासन ने चलचित्र-जगत पर, जो सेंसर नियुक्त किये हैं, वे साहित्यकार और कलाकार न होकर, किसी अन्य विषय के विद्वान हैं।

मेरी अपनी नाकिस बुद्धि के अनुसार समाज के विकृत तथा दिशाहीन होने का कारण हमारा चलचित्र-जगत का साहित्य ही दोषी नहीं. सम्पूर्ण साहित्य दोषी है। विश्व का साहित्यकार नंगी-सभ्यता का विकास कर रहा है। अधिकांश साहित्यकारों ने धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति को तिरोहित कर दिया है। उनके साहित्य ने समाज को रूप-सौंदर्यता के सरोवर में डूबने को मजबूर कर दिया है। उपन्यास, कहानी, नाटक तथा गीत आदि अधिकांश भिन्न-भिन्न शैलियों और बोलियों में रूप-सौंदर्य की उपासना कर रहे हैं। उपन्यासकार अपनी ही कमजोरियों को रूप दे रहा है—गीतकार अपने को दौहरा रहा है। चित्रकार 'मौडल' में मस्त, अनेकों मुद्राओं के चित्र प्रस्तुत कर रहा है। कहानीकार अपनी ही कहानी कह रहा है। वह अपनी कमजोरी को व्यक्त कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो हमारा अधिकांश साहित्यकार अर्वाचीन-युग का 'रूप-नगर' का दास बन गया है।

साहित्य के अन्तर्गत रूप-सौंदर्य का अपना एक स्थान है। अतीत के साहित्य ने भी रूप-सौंदर्य का मार्मिक चित्रण किया है, परन्तु उसके रूप-सौंदर्य की आख्यापिका का अन्त मंगलकारी है। वह सत्य और सुन्दर के साथ-साथ शिव भी है। हमारा आज का अधिकांश साहित्य सत्य और सुन्दर हो सकता है, परन्तु उसे 'शिव' नहीं कहा जा सकता। जो सत्य और सुन्दर समाज का कल्याण नहीं कर सकता—समाज के उत्थान का भागीदार नहीं बन सकता, तो उसे व्यक्तिगत स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु जब सत्य और सुन्दर समाज के पतन के कारण बनते जा रहे हों, तो सत्यं-शिवं-सुन्दरं के उपासकों के लिए यह एक चिनौती है। स्वास्थ्य-सौंदर्य की हीनता के कारण रूप-सौंदर्य कुरुप हो गया है, जो समाज के लिए अभिशाप बन रहा है। आज का कलाकार मानव-मन की कमज़ोरियों को व्यक्ति करने में सफल हो गया है। केवल कमज़ोरियों का प्रदर्शन ही सब कुछ नहीं है। मानव के कमज़ोर पक्ष पर ही अधिकांश साहित्य उभर कर आया है। मानव कमज़ोरियों तथा परिस्थितियों का दास ही नहीं, वह सबलता का प्रतीक और माहोल का स्वामी भी है। मानव के सबल-पक्ष की उपेक्षा, आज के अधिकांश साहित्य के हर क्षेत्र में दिखाई देती है। यही कारण है जिस से नंगी-सभ्यता का विकास हो रहा हैं।

संसार में प्रायः साहित्यकारों की बाढ़ आई हुई है। हर हाट-बाट चोराहे पर आपको साहित्यकार के दर्शन हो सकते हैं। आज के साहित्यकार का दावा है कि उसने अध्ययन कम किया है परन्तु लिखा अधिक है। अधिकांश साहित्यकारों का अध्ययन शून्य है। अध्ययन, चिंतन तथा मनन ही साहित्यकार की साधना है, परन्तु उनकी साधना "हाय, लैला ! हाय, लैला !!" का विशेष अभ्यास ही साधना है। कुछ दिन किसी बदनसीब लड़की के पीछे, हाय लैला ! हाय लैला !! करने के पश्चात लिखना आरम्भ कर देते हैं। उनकी वासना अनेकों लैलाओं को जन्म देती है। उनका समस्त साहित्य उनकी स्वयं की कमज़ोरी का दिग्दर्शन मात्र है। इसी प्रकार के एक साहित्यकार से मेरा परिचय हुआ। साहित्य पर चर्चा हुई। उस साहित्यकार महोदय ने कहा कि उसके साहित्य की थीम सामाजिक बुराई रहती है। उसने ठीक ही कहा था। आज का साहित्य अधिकांश सामाजिक-बुराइयों का कुरुप-पिटारा है। उसे कहने के लिए सामाजिक बुराइयों का चित्रण कह सकते हैं. परन्तु सत्य यह है कि वह स्वयं साहित्यकार की बुराइयों का लेखा-जोखा है।

मेरा अभिप्राय साहित्यकारों की बाढ़ रोकना नहीं, परन्तु उसे सही दिशा की नितान्त आवश्यकता है। यह कार्य हमारे आज के उन साहित्यकारों को करना

चाहिए जो वास्तविक साहित्यकार हैं। संसार में वास्तविक साहित्यकारों की कमी नहीं। वे मानव-समाज के पूज्यनीय आदर के पात्र हैं। समाज और साहित्य को उन पर गर्व है। दुर्भाग्य से इस विकृत-युग में उनका न कोई संगठन है और न कोई सामूहिक आवाज़ ही। वे उदास और नाशाद जीवन व्यतीत करते हुए साहित्य सृजन कर रहे हैं। उनके पास समय का अभाव है। उन्हें यह सोचने का समय भी नहीं है कि उनके साथी साहित्यकार अनेकों देशों में जेलों में बंदी हैं। उनका दोष यही है कि वे शासन के अत्याचारों का समर्थन नहीं करते। फिर उन से यह आशा करना कि वे नवीन खेमे के साहित्यकारों की सहायता कर सकते हैं, कठिन है।

मैं कोई साहित्यकार नहीं। साहित्य और साहित्यकार का पुजारी अवश्य हूं। साहित्यकार के कलम की सफाई करने भर की तमीज भी इस जन्म में पैदा नहीं कर सका। परन्तु साहित्य और साहित्यकारों से प्रेम है, इसलिए अपने को साहित्यकारों से निवेदन करने का अधिकारी समझते हुए भारतीय-साहित्यकारों से विनय करता हूं कि संसार के जो महान साहित्यकार अनेकों देशों में बंदी हैं, उनकी मुक्ति के लिए प्रयास करें। साहित्यकार तो वंदना के योग्य है—उसे बंदी बनाना अभिशाप है।



बातें घर की

डा० शम्भुनाथ सिंह

छोड़ो बातें दुनिया भर की,
आओ कुछ बात करें घर की ।

गमलों को धूप से हटा दो
बुझी हुई अंगीठी जला दो;
गर्द झाड़ दो इन परदों की
बिस्तर की सिलवटें मिटा दो ।

लहरों में डूब दोपहर की—
आओ, कुछ बात करें घर की !

बाहर ये कितनी आवाज़ें
शोर - शराबे गाजे - बाजे ।
क्षण भर कुछ अपनी कह-सुन लें
बन्द करो खिड़की दरवाजे ।

छोड़ो बातें इधर-उधर की,
आओ, कुछ बात करें घर की !

सड़कों की ये दुर्घटनायें
कमरों के भीतर मत आयें
घर के अन्दर भी खतरे हैं,
देख कर चलो दायें-बायें।

बिगड़ी हैं हवायें शहर की।
आओ, कुछ बात करें घर की।

मौसम की ठंड से न कांपें,
भीतर की गरमाहट तापें,
देहरी से आंगन तक चल कर
अनजाने क्षितिजों को नापें।

ओ मेरी धूप दिसम्बर की—
आओ, कुछ बात करें घर की ॥



पिपासित नाविक

॥ मन्साराम चंचल ॥

मैं पिपासित खे रहा नौका सलिल में ।
बीचिगानों में छिपी हे
आह मेरी,
मिट चुकी है आंधियों में
राह मेरी,
एक धूमिल किरण नभ में
है चमकती,
जी रहा हूं जलन लेकर हृदयतल में ।
मैं पिपासित खे रहा नौका सलिल में ॥
मैं किनारों से विलग हो
चल रहा हूं,
मैं बहारें खोजता हूं,
फिर रहा हूं
चन्द्रिका में मैं सितारों
का पुजारी,
ढूंढता मैं बूंद, जब है अबनिजल में ।
मैं पिपासित खे रहा नौका सलिल में ॥

फूल सौरभ को लुटाना
चाहते हैं,
अध खिले कोरक लजाना
चाहते हैं,
पर मुझे आशा बनी है
उस कली की
जो कि बरबस आ समाई उर विकल में।
मैं पिपासित खे रहा नौका सलिल में ।।



काला जलूस

पृथ्वीनाथ मधुप



आसमान पर
मंडराते चमगादड़।
देखतीं
उल्लुओं की आंखें।
कहीं दूर
किसी दैत्याकार पक्षी की चीख !

हर मुंह
आंख—
बेहरकत खुली,
सांस रुकी-रुकी,
बौने, स्थिर—
ऊपर उठे हाथ—
ज़र्राफी तरु की फुन्गी से

कुछ उतारने को आतुर;
पोलेपन का साथ
टूटी बैसाखियों का आधार.........
शंख,
अज़ान
या
और कोई ऐसी ही ध्वनि,
आम सभा में दिया
या
रेडियो से प्रसारित भाषण
प्रयोगशालाओं में
कार्यरत मस्तिष्क,
क्लासरूमों के लेक्चर,
मैत्री
नातेदारी,
खून का सम्बन्ध,
प्यार,
बात—
यह, वह :
विशेष, आम
या यों कहें
कि—
ज़िन्दगी का हर काम
घड़ी की
टिक टिक टिक टिक टिक टिक
के ऊपर

(या
बाहर भीतर)
तम की परत पर परत पर परत
चढ़ाते जा रहे हैं !!

अगिन काले बुर्कों की भीड़—
विपल, पल, घड़ी, पहर—
चली जा रही निरन्तर :
अनन्त जुलूस
कालिमा का
इसी में
खो गये हैं
हम सब ।



हकूमत

ठाकुर पुंछी

बाप दादा हकीमी करते थे । इसलिये नियम के अनुसार उन्हें भी हकीम होना चाहिये था । जैसे वहां तहसीलदार का बेटा तहसीलदार होता था, पटवारी का बेटा पटवारी, डाक्टर का बेटा डाक्टर होता था और फौजी का बेटा फौज की ही नौकरी करता था । यही पुरानी रीति थी । लेकिन एक असाधारण घटना हुई और उस असाधारण घटना ने बाप दादा का पुराना पेशा उन से छीन लिया और हकूमत की एक डोर उनके हाथ में पकड़ा दी । यह बात सारी रियासत में मशहूर थी कि बूटासिंह के स्वर्गीय पिता, बड़े सरदार साहब ने, जो अपने नाम के साथ ख़ानदानी हकीम लिखते थे, बड़े राजा साहब को दवा की एक अनमोल गोली दी थी । उस अनमोल गोली का असर यह हुआ कि राजा साहब की ज़िन्दा रानियों में से सब से छोटी और क्रम के अनुसार आठवीं रानी ने टीका साहब को जन्म दिया । लड़कियां तो बहुत थीं लेकिन लड़का कोई न था जो गद्दी का अधिकारी बन सके । इस तरह रियासत की गद्दी का एक सुन्दर वारिस पैदा करके सरदार साहब की पहुंच राज दरबार में हो गई और उनका लड़का बूटा सिंह, जो पहले, दिन भर जड़ी-बूटियां इकट्ठा किया करता था, अब माल के महकमे का एक अफसर बन गया । बड़े सरदार साहब की मृत्यु के बाद हकीमों की प्राचीन ख़ानदानी दुकान को हमेशा के लिये बन्द कर दिया गया । जब तक नूरपुर रियासत रही बूटासिंह नायब तहसीलदार ही रहे । जब दरबारी झगड़े के कारण नूरपुर की रियासत को जागीर बना दिया गया वे छलांग लगा कर तहसीलदार बन गये । उस रियासतनुमा जागीर में रुपया कमाया नहीं, लूटा जाता था और वह भी दोनों

हाथों से। बूटासिंह तो सोना उगलने वाले खेतों के मालिक थे। खूब लूटा। बाप दादा तो खाली दवाओं की खाली बोतलें ही छोड़ गये थे, उन्होंने खाली बोतलों में सोना भरा। पुराने मकान की जगह हवेली खड़ी की। अब यह रिटायर हो चुके थे और शाही ठाठ-बाट से रहते थे। हकूमत का नशा बाकी था, जिसे वे अपनी बेटी और बेटे पर निकालते थे। अब वह समय न रहा और वह नशा भी टूट गया। अब वे सिर्फ बड़बड़ाते थे और गाली बकते रहते थे। लोग कहते हैं कि पहले उन्होंने कभी गाली न बकी थी और न कभी किसी को बुरा-भला कहा था। शान्त प्रकृति के मनुष्य थे। बहुत मिलनसार और मित्रतापूर्ण बर्ताव रखने वाले, स्वभावतः मिल बांट कर खाने के आदी थे। लेकिन जब से उन की सुन्दर प्यारी बेटी गावां सरदार कश्मीरा सिंह के साथ भाग गई है, उनका दिमाग बिगड़ गया है और वह बिगड़ा हुआ दिमाग नई-नई गालियों का अविष्कार किया करता है। प्रातःकाल सवेरे ही अपनी हवेली की ऊंची छत पर खड़े होकर पहले बड़बड़ाते थे और उसके बाद ज़ोर-ज़ोर से गालियां बकना शुरू कर देते थे। यह दौरा सिर्फ एक दो घण्टे का होता था। उसके बाद दिमाग ठीक काम करने लगता, दोपहर को शान्त रहते, खाना वगैरह खाकर सो जाते, और शाम को फिर हवेली की ऊंची छत होती और गालियां।

लोग यह भी कहते थे कि गावां को भगाने में उनके बेटे का हाथ था। भाई ने बहन को भागने में मदद दी क्योंकि वह खुद भी बन्तो नाम की एक गरीब लड़की से प्रेम कर रहा था। ठीक भी था क्योंकि जब हराम का पैसा हो और ऊंची हवेली हो, बेपरवाही के दिन हों, और आस-पास मुर्गे बांग देते फिरते हों तो प्रेम आ ही धमकता है। गरीब लड़की के लिये, चाहे अमीर लड़की के लिये, उस हवेली में भी प्रेम का तूफान आ धमका था और गावां को भागने में मदद देकर वह अपने लिये रास्ता तैयार कर रहा था। जिस से उसी रास्ते को पकड़ कर वह भी बन्तो को लेकर अपनी कल्पना की दुनिया में पहुंच जाये, जहां न तहसीलदारी का दबदबा हो और न ही ऊंची हवेली के नये रंग में पुरानी दरारें। लोग तो यहां तक भी कहते थे......जितने मुंह थे उतनी बातें थीं।

ठीक है, वह जड़ी-बूटी की सूझ-बूझ रखते थे लेकिन उमर का भी तो कुछ प्रभाव होता है। कुछ भी हो, लेकिन असलीयत यह थी कि पहली स्त्री के मर जाने के बाद उन्होंने दूसरी शादी नहीं की थी। अपनी रिश्तेदार विधवा औरतों की मदद ज़रूर करते थे। उनकी लड़कियों के ब्याह पर भी रुपया खर्च करते थे। इस नेक काम में अगर कभी उन्हें होंठ रंगने का मौका मिल जाता तो रंग लेने में क्या हर्ज था? आदत थी, क्योंकि सारी उमर तहसीलदारी करते गुज़ारी थी।

उनकी लाडली बेटी गाबां बहुत ही सुन्दर थी। घुंघराले बालों और भूरी आंखों वाली, अपनी छोटी जिन्दगी में उसने घटनाओं की लम्बी कहानियों को देखा पढ़ा न था। इधर-उधर से बातें ही सुनी-सुनाई थीं और उन सुनी-सुनाई बातों पर वह विश्वास करती थी। बचपन और लड़कपन में सिर्फ गांव की घाटियां ही देखी थीं और सिर्फ परियों के प्रेम की कहानियां सुनी थीं। चांदनी रातों में गीतों की तानें सुनी थीं। झरनों को देखा था और निर्झरों से अपने दिल को गुदगुदाया था। लेकिन जवानी ने शहर में आंख खोली थी। कुछ न जानते पहचानते हुए भी उसने शहर के हर सुन्दर युवक से प्रेम करना शुरू कर दिया था। उसकी सुन्दरता और नासमझी ने उसे "हीर" के अन्दाज़ तो दिये ही थे, कई "रांझे" भी पैदा हो गये और उसके प्रेम के पागल बनने लगे। पतंगें उड़ाई जातीं, खुले वातावरण में उनके पर तोले जाते, पेंच डाले जाते और फिर कटी हुई पतंगों के साथ ही भाग जाने की तैयारियां कर ली जातीं। कई पतंगें उड़ीं, कई पेंच डाले गये, कई बार वातावरण में अपने पर तोल कर गोता लगाने का इशारा किया गया। लेकिन तहसीलदार साहब को समय पर पता लग जाने के कारण योजनायें धरी की धरी रह गईं। कटी हुई पतंगें पहाड़ों की तरफ उड़ गईं लेकिन कश्मीरा सिंह जो दसवीं फेल था, मगर एक अच्छा तैराक था, जिसने बाढ़ के दिनों में तीन सौ भैंसें किनारे पर लगाई थीं और कई जानें बचाई थीं, जिस की चर्चा सारे भारत में थी, बिना देखे ही गाबां की निर्दोष आंखों में समा गया। यद्यपि यह बात भी मशहूर थी कि कश्मीरा सिंह औरतों को दीमक का नाम देता है जो पुरुष की ज़िन्दगी को धीरे-धीरे चाटती रहती है।

वह अपने शरीर को खूबसूरत और मज़बूत बनाना चाहता था। जिस से वह बाढ़ का, सीना तान कर अच्छी तरह सामना कर सके जो हर साल रियासत के गांवों को बहा कर ले जाती थी। उसका अपना गांव भी उसी की भेंट हो चुका था और साथ ही मां-बाप और सगे-सम्बन्धी भी। बाढ़ हर साल पूरे ज़ोर से आती थी और कश्मीरा सिंह उसका मुकाबिला करने के लिये अभ्यास करता रहता था। उसने और भी साथी बना रखे थे। उनकी मदद से वह बाढ़ का सामना करता था लेकिन उन लोगों ने अब अपने-अपने घर बसा लिये थे।

लोग पूछते—"तुम्हारे साथी कहां गये?"

कश्मीरा सिंह ज़ोर से हंस कर जवाब देता—"उन्हें दीमक चाट गई।"

"तुम्हें क्यों नहीं दीमक चाटती?"

"मैं देवदार की लकड़ी का बना हूं। मुझे दीमक कैसे चाट सकती है?"

लेकिन अब उसने खुद दीमक को अपना लिया है।

जब पहली बार उसने गाबां को देखा तो उसी का हो रहा। मुलाकात बढ़ती गई। दीमक उसके करीब आती गई। गाबां का भाई कश्मीरा सिंह का दोस्त बन गया। वह उन दोनों की मदद करना चाहता था। दोनों सुन्दर थे, जवान थे, प्रेम करते थे, मगर तहसीलदार साहब अपनी लड़की की शादी ऐसे लड़के से करना चाहते थे जो खुद तहसीलदार हो या उसका बाप ही तहसीलदार रह चुका हो क्योंकि वह खुद तहसीलदार रह चुके थे। उनके पास रुपया था, नये ढंग की एक ऊंची हवेली भी थी। वे कश्मीरा सिंह जैसे दसवीं फेल लड़के को अपनी लड़की कैसे सौंप सकते थे ? उनके इरादों से वे दोनों परिचित थे। बात चलाने का सवाल ही पैदा न होता था। इसलिये एक रात को जब वर्षा हो रही थी और नदी में बाढ़ आ गई थी गाबां और कश्मीरा सिंह भाग गये।

तहसीलदार साहब को जब पता चला तब तक भागने वाले अपनी कल्पना की दुनियां में पहुंच चुके थे। वर्षा और बाढ़ ने दुनियां वालों के लिये रास्ता रोक रखा था। तलाश करना व्यर्थ था इस लिये सरकारी तौर पर उनकी तलाश न हो सकी, लेकिन उन्होंने बेटे को खूब पीटा। हर रोज़ पीटते। जवान बेटा था लेकिन मार खाता रहा। एक दिन मार पीट खत्म हो गई। सिर्फ गालियां रह गईं। अब लोग उन्हें पागल समझते थे। क्योंकि गाबां के काम ने उन्हें बहुत दुःख पहुंचाया था, और उनकी विचार शक्ति को नष्ट कर दिया था। इन्हीं दिनों रियासत में साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गये। यह कोई नई बात न थी। वहां प्रायः झगड़े हुआ करते थे, और इन झगड़ों को विद्रोह का नाम देकर किसी खास सम्प्रदाय के साथ जोड़ दिया जाता था। रियासत का एक मात्र अखबार जो महीने में सिर्फ एक बार दो पृष्ठों पर छपता था, एक मोटा सा शीर्षक देकर प्रकाशित करता—

"रियासत में हिन्दू अशान्ति का सूत्रपात"

"रियासत में मुस्लिम अशान्ति का सूत्रपात'

"रियासत में सिख अशान्ति का सूत्रपात"

इस तरह की कई अशान्तियां रियासती शासन के विरुद्ध हुआ करती थीं। लेकिन हकूमत उन्हें हमेशा साम्प्रदायिक रंग दे देती थी। अखबार के शीर्षक के अनुसार इस बार मुस्लिम अशान्ति का सूत्रपात हुआ था। कुछ तो अशान्ति ने तीव्र रूप धारण कर लिया था और कुछ हकूमत के कर्मचारियों ने भी बढ़ा-चढ़ा कर बात बनाई थी। अशान्ति किसी गांव में थी किन्तु उसका प्रभाव शहर में भी दिखाई देता था। लेकिन सब से ज्यादा प्रभावित बूटा सिंह तहसीलदार हुए। उनको फिर मार पीट करते और गाली बकने का दौरा पड़ने लगा। बात-बात पर बिफरते और वक्त-बे-वक्त गाली बकने लगते। अब लोग यह समझने लगे थे कि दौरे

की वजह न तो गात्रा है और न उसकी याद। उसे वह भूल बैठे थे। लोग भी उस घटना को भूल गये थे। अब उन्हें हकूमत से शिकायत थी क्योंकि आशानुसार अशान्ति को दबाने के लिये उन्हें मजिस्ट्रेट नहीं बनाया गया था जैसा कि नियम था। यद्यपि बहुतेरे रिटायर्ड अफसरों पर कृपा-दृष्टि की गई थी।

शहर के बाहर एक बावली थी। सांपों वाली बावली। वहां सवेरे चार बजे से लेकर नौ बजे तक खूब भीड़ रहती थी। धर्मात्मा बूढ़े लोग सवेरे प्रातःकाल ही नहा कर चले जाते थे। उसके बाद सरकारी नौकर आते और जब वहां कोई न होता तो रिटायर्ड लोग आते, जो शाही खजाने से अच्छी पेन्शन पाते थे। अशान्ति की वजह से इस प्रकार के लोगों में काफी चहल-पहल थी। हकूमत को अकसर कोसा जाता था क्योंकि उन जैसे अनुभवी पुराने पेन्शनरों की सेवायें हासिल नहीं की जा रही थीं।

सदैव की भांति रिटायर्ड लोग बावली के हरे-भरे तल्ले मे बैठे मालिश कर रहे थे, शीर्षासन लगा रहे थे कि इतने में ही बूटा सिंह एक कच्छा और कुरता पहने हुए आ धमके। आइये-आइये की आवाज़ें आईं। लेकिन वह तल्ले में न गये। एक बूढ़े सरदार साहब, जो पहले पुलिस इन्सपेक्टर रह चुके थे और अपनी जवान लड़की उनके बेटे को देना चाहते थे, उनके करीब आये और उनके कान में कुछ कहा। उनकी बात सुनते ही बूटासिंह ने अपनी बोतल पत्थर पर पटक दी और ज़ोर-ज़ोर से हकूमत को गालियां देने लगे—

हकूमत बदजात है !
हकूमत डाकू है !
हकूमत हरामखोर है !

न जाने उन्होंने क्या-क्या बका और बिना स्नान किये ही गाली बकते हुए घर चले गये। हकूमत को इस तरह खुल्लमखुला गाली देना, खास कर पेन्शनर लोगों के लिये जुर्म समझा जाता था। ज़मीन जायदाद ज़ब्त हो सकती थी और कैद की सज़ा मिलनी भी सम्भव थी। प्रजातन्त्र शासन तो था नहीं कि लिखने और बोलने की स्वतन्त्रता होती, फिर प्रजातन्त्र में भी गाली देना जुर्म है। उसी रात को जब तहसीलदार साहब सोये हुए थे, पुलिस हथकड़ी लगाकर उन्हें थाने में ले गई।

उन पर अभियोग यह था कि उन्होंने सांपों वाली बावली पर हकूमत के पेन्शनरों की सभा करके हकूमत को गाली दी। हकूमत को गाली देने का मतलब है राजा साहब को गाली देना, राजा साहब को गाली देने का मतलब है—राजा के पूर्वजों को गाली देना और उनके पूर्वजों का सम्बन्ध चूंकि भगवान से जुड़ता था इसलिए

उनको गाली देना भगवान को गाली देने के समान था। यह बात अशान्ति फैलाने की अपेक्षा अधिक आपत्तिजनक मानी गई और मुकदमा अदालत तक पहुंचा।

जिस दिन पहली पेशी थी। अदालत का कमरा लोगों मे भरा हुआ था। कुछ रिटायर्ड लोग थे, कुछ गावां के प्रेमी थे और कुछ ऐसे भी थे जो नौकरी पेशा थे किन्तु अपनी दशा से असन्तुष्ट और दुखी थे। यह अपनी किस्म का पहला मुकदमा था क्योंकि एक तहसीलदार कटघरे में खड़ा था। साधारण लोग तो हकूमत की अशान्ति को बुरा भला कहते ही रहते थे लेकिन जिसने रियासत का नमक खाया हो, और अब तक बराबर चाट रहा हो, उसके मुख से ऐसे बुरे शब्द और बुरा वर्ताव सहन करने के अयोग्य था।

सरकारी वकील क्रोध से लाल-पीला हो रहा था। जो बातें बूटा सिंह तहसीलदार ने नहीं कही थीं, वह भी उनके मुंह में ठूंसी जा रही थीं। गालियों की एक लम्बी फेहरिस्त थी जिसमें मां, बहन और बेटों की गालियां थीं और इसके सिवाय दूसरी गालियां भी थीं जो अश्लील और निन्दा करने योग्य थीं।

बूटा सिंह तहसीलदार, हथकड़ी पहने कटघरे में खड़े थे। पहली ही पेशी में फैसला सुनाया जाने वाला था। जब सरकारी वकील अपना ब्यान समाप्त कर चुका और तीन साल की बा-मुशक्कत सज़ा तजवीज़ कर चुका तो माननीय जज ने पूछा—

"आप तहसीलदार रह चुके हैं?"

"जी हां।"

"कितने समय तक?"

"पांच साल नायब और पन्द्रह साल तहसीलदार"

"कितनी पैन्शन पाते हैं?"

"पचहत्तर रुपये"

"कब से पैन्शन ले रहे हैं?"

"लगभग दस साल से"

"क्या आपके स्वर्गीय पिता हकीम थे?"

"जी हां।"

"जो अभियोग आप पर लगाया गया है वह ठीक है?"

"जी हां, सोलह आने ठीक है।"

"आप को अपनी सफाई में कुछ कहना है?"

"सिर्फ इतना ही, कि जो गाली मैंने हकूमत की दी, जो कुछ मैंने कहा, मेरा हक है, मैंने हकूमत को अपना खून दिया है, दिन रात उसकी खिदमत की है, मेहनत की है, उसे बनाया संवारा है; मैं चाहूं तो उसे तहस-नहस भी कर सकता हूं।

जज ने आग बबूला होकर कहा—"सरकारी वकील ने तो सिर्फ तीन साल की सज़ा उचित समझी। मैं आप को सात साल की सज़ा देना चाहता हूं।"

बूटा सिंह ने अपनी बात जारी रखी—"मुझे मंजूर है, लेकिन मैं दुबारा अर्ज़ करूंगा कि हकूमत को भला बुरा कहना मेरा हक है। उस का यह काम नया नहीं है। पहले भी मुझ पर ऐसे बार हो चुके हैं। यह मेरी इज्ज़त का सवाल है।

"कैसे वार ?"

"पहले गाबां को भगाने में मदद दी।"

"हकूमत ने ?", जज साहब ने हैरान होकर पूछा।

"जी हां, हकूमत ने। हकूमत ही ने उस बेशर्म कश्मीरासिंह को भागने दिया।"

"हकूमत को आपके घरेलू मामले में दखल देने की क्या ज़रूरत थी ?"

"आपको शायद पता नहीं है, लेकिन इस बात को बच्चा बच्चा जानता है। मेरी जगह आप होते तो आप भी ऐसा ही कहते। इस तहसीलदारी ने मेरा घर उजाड़ कर रख दिया। खानदान को तबाह करके रख दिया। मैं एक दुःखी बाप हूं। ऐसी हालत में जो कुछ चाहूं कह सकता हूं......क्योंकि......"

जज साहब ने बात काट दी—"तहसीलदार साहब आप......"

"बूटा सिंह ने उनकी आवाज़ में अपनी बात पूरी की, "क्योंकि मैं हकूमत का बाप हूं।

"किस हकूमत का ?"

"अपने हकूमत सिंह का। मैंने अपने बेटे हकूमत सिंह को ही बुरा भला कहा था, अब भी कहूंगा। भरी अदालत में सब के सामने कहूंगा कि हकूमत......"

अदालत में एक कहकहा गूंज उठा।

सरकारी वकील चीख कर बोला, "यह बहाना है, झूठ है। यह बेटे के नाम की आड़ में छुटकारा पाना चाहता है।"

बूटा सिंह ने रुंधी दुई आवाज़ में कहा—"हकूमत किसी बन्तू नाम की लड़की को लेने अशान्ति वाले गावों में चला गया है। अगर वह फसादियों के हाथ मारा

गया तो......एक ही बेटा है, बेटी भी चली गई है। अब सिर्फ बेटा रह गया था वह भी गया। हमारे खानदान में भूखे नंगे होते हुए भी ऐसा कभी नहीं हुआ। तहसीलदारी का पैसा ही ऐसा निकला। यह ऊंचा दर्जा मेरे लिये भलाई का कारण नहीं हुआ। मैं दोबारा हकीमी का पेशा अपनाऊंगा।"

हकूमत सिंह को हकीम बनाऊंगा, और...... ।"

जज ने फाईल पर तेज़ी से अपनी कलम से फैसला लिखा और फिर उसे पढ़ कर सुनाया :

"सरदार बूटा सिंह रिटायर्ड तहसीलदार के बेटे का नाम हकूमत सिंह है...... ...हकूमत सिंह। उन्हें सम्मान के साथ बरी किया जाता है, लेकिन एक महीने की पैन्शन जो पचहत्तर रुपये होती है, ज़ब्त की जाती है।

बूटा सिंह सटपटाया......"किस जुर्म में ?"

जज साहब ने कुर्सी से उठते हुए कहा :

"रियासत की सीमा में और खास कर राजा साहब की जागीर में ऐसे नाम नहीं रखे जा सकते।"



डोगरी लोक कथा साहित्य

एक परिचय

विष्णु भारद्वाज



हमारा देश भारतवर्ष लोक-कथाओं की खान है। इन लोक कथाओं में जीवन अपने विविध रंगों में अंकित, सरल, स्वाभाविक झांकिया प्रस्तुत करता आपको मिलेगा। इन लोक-कथाओं के भण्डार सभी प्रादेशिक भाषाओं में भरे पड़े हैं जिनमें मूल कथानकों में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ यह कथायें लगभग एक ही समान सुनने को मिलेंगी। फिर भी प्रादेशिक आस्था-विश्वास, रीति-रिवाज तथा वातावरण के अनुसार ये कहानियां स्थानीय परिधान कुछ इस प्रकार ओढ़ लेती हैं कि अपने अपने प्रदेश के जन-जीवन की सरल स्वाभाविक तस्वीर बन जाती है। डोगरी लोक-कथाओं के सम्बन्ध में भी यह बात पूरी तरह ठीक उतरती है।

मानव-विकास की कहानी का आरम्भ बचपन की चंचलता से ही होता है। दूसरे शब्दों में यूं कह लीजिए कि बचपन की चंचलता ही मानव संसार की गति-शीलता अथवा जीवन का प्रतीक है। शिशु के रूप में प्रस्फुटित होते ही भोला बचपन इस असीम संसार के विषय में अधिक से अधिक जान लेने की उत्सुकता लिए अपने आप जीवन रूपी रंगमंच के वयोवृद्ध अनुभवी कलाकारों के पास जा पहुंचता है। बचपन और बुढ़ापे के इस मिलन के साथ ही कई बार कही सुनी हुई कथा-कहानियों की पुनरावृत्ति आरम्भ हो जाती है। इन कथाओं से नन्हें मुन्नों के

कौतूहल, उनकी जिज्ञासा और आश्चर्य की बृद्धि के साथ-साथ ज्ञान वृद्धि भी कम नहीं होती। देश के अन्य भागों की भांति डुग्गर में भी कोई ही ऐसा अभागा घर होगा जो कथा कहानियों की इस अमूल्य बरासत से वंचित हो। रात ढलते ही नन्हें मुन्ने बड़े बजुर्गों की गोद में आ सिमटते हैं और आग्रह शुरु हो जाता है, "दादी, दादी, कहानी सुनाओ न दादी।" अब देखिये कहानी सुने बिना नन्हे को नींद नहीं और सुनाये बिना दादी को चैन नहीं। तो लीजिये साहब नन्हों की तोतली भाषा में फरमाइश होने की ही देर थी कि दादी अम्मा के पोपले मुंह से कथा आरम्भ हो गई "एक थी रानी एक था राजा", अब आप पूछेंगे कि राजा कौन था, रानी कौन थी, क्या नाम थे उनके। वे कहां के रहने वाले थे। कितनी ही बातें होती हैं पूछने वाली। लेकिन विश्वास कीजिए इन सब से नन्हें मुन्नों को कोई प्रयोजन नहीं। बस इतना ही काफी है कि एक राजा था उसकी पांच रानियां थी। नन्हें सुनते सुनते बारी बारी हूं-हां करते जाते हैं और कथा समाप्त होते ही दूसरी के लिए आग्रह शुरू हो जाता है। "दादी एक और बस केवल एक-वही चिड़िया कौए वाली अथवा बकरी के बच्चे वाली" इत्यादि।

अब होता यह है कि बच्चों के लगातार अनुरोध को दादी मां टाल नहीं सकती। टाले भी तो कैसे। नहीं नहीं कहते हुए भी, कई बार कही-सुनी हुई वही कहानी फिर दुहराई जाती है।

"बच्चो! एक थी चिड़िया, एक था कौआ। चिड़िया का घर था तिनकों का, और कौए का था नमक का। एक दिन चिड़िया कौए के घर जाकर बोली "भैय्या कौए थोड़ा सा नमक तो दे दो, दाल में डालने के लिए, पर कौए ने साफ इन्कार कर दिया। कहने लगा "अब मैं तेरे लिए अपना घर नष्ट कर दूं।" चिड़िया बेचारी चली गई, उसने बिना नमक के ही दाल पकाई और खा पी के सो गई, जैसे हमारे नन्हे मुन्ने सो जाते हैं।

अरे सो गए क्या?

"नहीं, नहीं दादी हम तो सारी कहानी सुनेंगे। हम तो सारी कहानी सुनेंगे। हम सोए थोड़े ही हैं, हम तो सुन रहें हैं।"

इतना सुनकर दादी अपने बाल गोपालों को इतना तन्मय पाकर कहानी की कड़ियां जोड़ती हुई कहती है।

"कुछ दिन बीते तो क्या हुआ कि एक रोज बड़े ज़ोर का पानी बरसा वर्षा हुई। तो बच्चो! कौए का घर नमक का था न। नमक पिघल गया और घर पानी में बह गया परन्तु चिड़िया का घर सुरक्षित था। अब कौए को लगी

सर्दी तो ठिठुरता हुआ धीरे धीरे चिड़िया के घर पहुंचा और कहने लगा : मौसी ! मौसी !! मेरा घर पानी में बह गया। सर्दी से मर रहा हूं सिर छुपाने के लिए थोड़ी सी जगह दे दो। चिड़िया बोली "अपनी बार तो तूने चुटकी भर नमक देने से इन्कार कर दिया था। अब क्या लेने आए हो यहां ? खैर तुम्हें क्षमा करती हूं, अन्दर चले आओ और किवाड़ के पीछे बैठ जाओ।" चिड़िया के मन में दया आई। सोचा दिन भर का भूखा प्यासा होगा। रात भर खाता रहा और वहीं बीठ भी करता रहा। सवेरा हुआ तो चिड़िया अपने घर के काम काज में लग गई। अपनी गाय को दुहने लगी तो बोली "कौए ज़रा बछड़ा पकड़ना मैं गैय्या दुह लूं।" कौआ अन्दर से बोला, "अभी आया मौसी, वह बोली "जल्दी आ न" तो कहने लगा "आ रहा हूं।" वह कपड़े बदल चुका था, उसने हाथ में अपना छाता लिया और चिड़िया की आवाज़ों को अनसुना करते हुए फुर्र करके उड़ गया।" देखो बच्चो चिड़िया ने कौए के लिए कितना कुछ किया लेकिन उसने फिर दगा ही दिया। इसीलिए तो कहते हैं कि कौए जैसे धोके बाज़ लोगों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ये बातें बहुत करते हैं पर धोखा देते हैं। दादी मां इस प्रकार कहानी समाप्त करते हुए कह उठती है "तो बच्चो कहानी गई समुद्र पार और हम रहे इस पार। अब रात बहुत बीत चुकी अब सो जाओ।" एस प्रकार न जाने कितनी छोटी बड़ी कथा-कहानियां फौज में भर्ती होकर गए सिपाहियों के साथ साथ दूर देशों में जा पहुंची हैं अथवा वहीं से आई हैं, कहना कठिन है। यह एक अलग खोज का विषय है। परन्तु नन्हे-मुन्नों अथवा दादी या नानी मां को खोज ख़पत से क्या वास्ता दादी बच्चों को सो जाने के लिए कह रही है पर उनकी फरमाईशें बन्द नहीं होती। "दादी मेरी कहानी तो तुमने सुनाई नहीं-वही बकरे के ननिहाल वाली" इतना कहते ही पप्पू रूठ गया तो दादी को उसकी पसन्द की वह कहानी भी सुनानी पड़ी।

"एक थी बकरी और एक था उसका नन्हा सा मेमना—एक दिन मेमना मां से बोला : "मां ! मैं ननिहाल जाऊंगा।" वह ज़िद करने लगा तो मां ने कहा जा लेकिन जल्दी लौट आना।" वह बोला--"मैं तो नानी के घर खूब खा पीकर मोटा ताज़ा होकर आऊंगा तो तुम मुझे पहचान भी नहीं सकोगी।" तो बच्चो-मेमना अपनी मां से विदा होकर अपनी ननिहाल को चल पड़ा। रास्ते में एक घना जंगल पड़ता था। वह जंगल में से गुज़र रहा था तो देखता क्या है कि सामने एक बहुत बड़ा सियार लाल लाल आंखें निकाले रास्ता रोके खड़ा है। वह मेमने को देखकर खिल-खिलाकर हंस पड़ा और अपनी लम्बी जीभ होठों पर फेरते हुए बोला— "आज आया तू मेरे हाथ, आज मैं तुझे खाकर ही दम लूंगा।" इतना सुनते

ही मेंमने के होश उड़ गए। वह कांपता हुआ बोला "न भैय्या। आज तू मुझे न खा। मैं ननिहाल जा रहा हूं। नानी के घर से खूब खा-पीकर मोटा ताजा होकर लौटूंगा तो तू मुझे खा लेना। सियार ने सोचा मेमना ठीक ही कहता है ज़रा बड़ा होकर लौटे तो इसे खाने में मज़ा भी आएगा और भूख भी मिटेगी। यही सोचते सोचते उसने मेमने का रास्ता छोड़ा और जंगल में चला गया।

तनिक विराम मिलते ही नन्हें झट पूछते हैं, "फिर क्या हुआ दादी ?"

अरे तुम सोए नहीं अभी, और कहानी आगे बढ़ती है "फिर उसकी मुलाकात एक भेड़िये से हुई और फिर एक शेर से। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी और सब को ऐसा ही वह कह कर चकमा देता गया। सभी भयानक जानवर यही सोचकर अपने ठिकानों को चले गए कि मेमना बड़ा होकर आएगा तो खूब मज़े से खाएंगे। मेमना नानी के हां गया तो उसने सारी घटना अपनी नानी को कह सुनाई। वहां वह कुछ रोज़ रहा। खाता पीता और मौज मनाता रहा और खूब पुष्ट हो गया। लौटने लगा तो डर के मारे जान निकलने लगी। नानी को एक तरकीब सूझी। उसने उसे एक ढोलक में बन्द करके ढोलक को रस्सियों से खूब कस दिया और ढोलक को पहाड़ के नीचे उसके घर की ओर धकेल दिया। राह में उसने देखा कि शेर, भेड़िया और सियार सभी ताक में बैठे हुए हैं। जब वह बकरे के सम्बन्ध में पूछते तो ढोलक के अन्दर से ही गाता हुआ जवाब देता "चल मेरी ढोलक ढमक डूं। कौन सा बकरा कौन है तू।" तू किस बकरे के बारे में पूछ रहा है ? तू कौन है ? वह बेचारे अपना मुंह लेकर रह जाते। ढोलक जब लुढ़कते २ घर पहुंची तो बकरे ने मां को आवाज़ देकर कहा "खोलो"। रसियां खुली तो बकरा बाहिर निकल आया और मां बेटा एक दूसरे को मिल कर बड़े खुश हुए। कहानी समाप्त हुई कि नन्हें (भी सो गए)।

ठीक इसी प्रकार की एक कहानी बंगला लोक कथा साहित्य की है जिस में बकरी का स्थान एक बुढ़िया ने ले रखा है और वह लाठी टेकतौ हुई अपती बेटी श्यामली के घर जाती हुई इसी तरह एक घने जंगल में से गुजरती है तो उसे भी बारी-बारी सियार, बाघ और सिंह जैसे हिंसक पशुओं से यही कह कर जान बचाना पड़ती है कि वहां से खा पीकर मोटी ताज़ी होकर लौटूंगी तो मुझे तुम खाना और अन्त में वहां से एक बड़े कद्दू में छुप बैठ कर लुढ़कती-लुढ़कती वापिस घर पहुंचती है और वैसे ही गीत के दो बोलों में राह पड़ते पशुओं को उत्तर देती जाती है। "चल रे कद्दू ढेलम ढेल—चलता चल तू चलता चल।"

हम देखते हैं कि कथानक बिल्कुल एक जैसा है। केवल पात्रों और वातावरण

में किंचित् मात्र परिवर्तन है जो कि स्वाभाविक है । यह बात इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि सभी प्रादेशिक भाषाओं में आप को बहुत सी कथाएं एक समान ही सुनने को मिलेंगी परन्तु स्थानीय रंग में रंगी हुई और वहां की जीवन झांकी को पूर्णतः अंकित करती हुई ।

इस प्रकार पशु पक्षियों से सम्बन्धित पंचतन्त्र की कथाओं की सी कहानियां, भूतप्रेत, पिशाच और परियों के देश की कहानियां डोगरी में भी हैं जो नैतिकता और आदर्श प्रधान हैं या अन्य प्रकार की जो बुझारतों अथवा पहेलियों के रूप में युगों-युगों से सुनाई देती चली आ रही हैं और गद्य में ही हैं। परन्तु बहुत सी कथाएं ऐसी हैं जो गद्य-पद्य मिश्रित शैलि में मिलती हैं। इन में प्रायः ऐतिहासिक व्यक्तियों, राजा महाराजाओं को नायक मान कर स्थानीय वातावरण में कल्पना की पुट चढ़ी मिलती हैं । यह कथाएं अधिकतर लोक गीतों के रूप में प्रचलित और सुरक्षित हैं जिन्हें स्थानीय जनकलाकार—"जोगी और दरेस" घर-घर घूम कर गाते और दोहराते आए हैं । ये वीर गाथायें "बार" कहलाती हैं। इस श्रेणी में गुग्गा चौहान, काली वीर, शालिवाहन, मालदेव और अमर सिंह राठौर आदि के किस्से आते हैं। डोगरी लोक गीतों के दूसरे प्रचलित रूप "कारक" में स्थानीय रमते जोगियों द्वारा गाई जाने वाली कविता बद्ध कथाएं आती हैं। ये हैं स्थानीय देवी देवताओं, शहीदों और देश-जाति के सपूतों की यशोगाथायें, जिन्हें मधुर स्वरों में गा गाकर ये जनकलाकार सुनने वालों को मन्त्र मुग्ध करते आए हैं। स्थानीय देवी देवताओं के अतिरिक्त बावा मोत्तो, बावा जित्तो और दादा रणपत आदि नायकों का वर्णन भी इन्हीं "कारकों" में मिलता है । वे नायक जिन्होंने उद्धत भूमि पतियों और जागीरदारों के अत्याचार सहन करने की बजाय अपना बलिदान देना स्वीकार किया था । आज भी उन महापुरुषों की समाधियों पर बड़े-बड़े मेले लगते हैं और उन की जीवन गाथाओं को दोहरा कर अन्याय और पाप पर सत्य की विजय को याद किया जाता है ताकि वह जन-जन के आने वाले जीवन में पथ प्रदर्शक का काम दे सकें। देव कथाएं भी इसी श्रेणी में आती हैं जिन में देवता सत्यपुरुषों पर कृपा करते दिखाए गए हैं अथवा पौराणिक नायकों को स्थानीय रंग में रंगा गया है। कई एक में तो पौराणिक देव कथाओं की पृष्ट भूमि तथा घटनास्थल डुग्गर को ही माना गया है जैसे शुद्ध-महादेव और उसके समीपवर्ती स्थानों पुरमंडल इत्यादि से सम्बन्धित शिव-पार्वती की बहुत सी कथाएं हैं। इन के अतिरिक्त डुग्गर प्रदेश में मुख्य स्थलों, ग्रामों, शहरों, नदी नालों घाटियों तथा झीलों से सम्बन्धित भी कई एक लोक-कथाएं प्रचलित हैं जिन में डोगरा पहाड़ी प्रदेश की परम्परा, रीतिरिवाज और जीवन की मनोहर झांकियां प्रतिविम्बित हैं।

डोगरी लोक कथाओं में कई एक प्रेमाख्यान हैं जो आदर्श प्रधान नहीं परन्तु कई बार ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तियों के साथ जुड़े हुए मिलते हैं। दूसरी हैं आदर्श प्रधान जो प्रायः नायक राजा अथवा पौराणिक महापुरुष के जीवन पर आधारित होती हैं। जैसा कि ऊपर दिया जा चुका है ये अधिकतर "बारा और वारकां" की पद्य-गद्य मिश्रित शैलि में ही मिलती है।

तीसरे आती हैं फेबल्ज अथवा पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कथाएं और परियों की कहानियां जो नैतिकता तथा आदर्श-प्रधान दोनों है—

फिर हास्य और व्यंग्य भरी हास्य रस प्रधान कहानियों की भी डोगरी लोक कथा साहित्य में कमी नहीं।

इसी प्रकार ऐतिहासिक लोक कथाएं हैं जो गद्य तथा पद्य दोनों रूपों में मिलती हैं।

अतः इन सब प्रकार की लोक कहानियों को मोटे रूप में दो भागों में बांट सकते हैं—

१ कोरे आख्याणक :—
वे कथाएं जिन की रचना किसी निर्दिष्ट उद्देश्य अथवा आदर्श को लेकर की गई है या नीतिप्रधान है।

२ और दूसरी हैं व्यंजना प्रधान जिन में जीवन का मर्म केवल ध्वनित भर किया गया है बाकी आदर्श पर पहुंचना श्रोता पर निर्भर करता है। हास्य और व्यंग से भरपूर व्यंजना प्रधान एक कथा यूं मिलती है कि—

एक गांव में दो मित्र रहते थे, एक था कुबड़ा और दूसरा अंधा। कुबड़ा बाहिर से काम काज करके अथवा भीख मांग कर ले आता और अंधा घर में बैठे बैठे जो कुछ भी उससे बन पड़ता रसोई आदि का काम निपटा लेता। दिन उनके भलि-भांति कट रहे थे। उन में किसी प्रकार का द्वेष अथवा मनमुटाव कभी नहीं हुआ था। लेकिन एक दिन कुबड़ा कुछ उदास उदास सा सोचने लगा "कमाने के लिए मारा मारा मैं फिरता हूं और यह कमबख्त घर बैठा ही मजे से भोग लगा लेता है। यहां तक कि पकाते पकाते चोरी छिपे खाने से भी बाज नहीं आता। कोई ऐसा उपाय ढूंढूं कि इससे छुटकारा मिले। घर लौटते हुए कुबड़े को एक मरा हुआ फनियर सांप रास्ते में पड़ा मिला। वह उसे उठा कर ले आया और बोला, "सूरदास जी ! लो यह मछली, आज यह पकाओ। अंधे ने उसे चीर बनाकर हांडी में चढ़ा दिया और अपनी आदत के मुताबिक वह पकते में ही उसे चखने को लपका। हंडिया का ढकना उठाकर हाथ डालने ही लगा था कि गर्म गर्म भाप उसकी आंखों पर ऐसे पड़ी कि उसकी रोशनी लौट आई। लेकिन हंडिया में पकता

हुआ सांप देखकर उसके पांव तले से ज़मीन निकल गई। सोचने लगा "कुबड़ा तो आज मेरी जान ले गया था।" वह गुस्से में लाल पीला हो रहा था। दुबक के एक कोने में धाक लगा के बैठ गया कि कुबड़ा आए और वह उससे बदला ले। इतने में कुबड़ा अपने खाने का प्रबन्ध करके पूरी-कचौरी बाजार से लेकर पहुंचा तो अंधे को जीता जागता देख चकित हो गया। उसने हंडिया उठाई और नाली में उडेलने लगा। सूरदास आंखें मीचे यह सब देख रहा था। मौका पाकर वह धीरे से उठा और उसने कुबड़े की पीठ पर ऐसी लात जमाई कि वह चिल्ला उठा "मार डाला" शोर सुनकर गांव के लोग इकट्ठे हो गए। उन्होंने उसे सहारा देकर उठाया। पीड़ा तो उसे बड़ी हुई थी परन्तु यह देख कर सभी हैरान रह गए कि कुबड़ा अब कुबड़ा नहीं रहा था। अंधे की एक ही लात उसकी पीठ को सीधा कर गई थी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है यहां के शुद्ध-महादेव और पुरमंडल आदि तीर्थ स्थानों को पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं की पृष्टभूमि माना गया है और इस सम्बन्ध में बड़ी ही दिलचस्प कथाएं प्रचलित हैं।

जम्मू से लगभग ६० मील उत्तर में जिसे चनैनी (चान्द्रायणी) कहते हैं माता पार्वती की जन्मस्थलि रही है। यहीं वह जन्मीं पली और जवान हुई और यहीं उन्होंने घोर तपस्या करके शिव को वर के रूप में पाया था।

चनैनी के उत्तर में ही विख्यात तीर्थ स्थान शुद्ध महादेव है जहां त्रिपुरारि सदाशिव प्रकट हुए थे और उन्होंने अपने त्रिशूल से क्षुद्धान्त नामक राक्षस का संहार किया था। इस शुद्ध महादेव के सम्बन्ध में एक बड़ी लोकप्रिया कथा है--कि एक बार शिव जी और पार्वती कैलाश पर्वत पर भ्रमण करते-करते प्रसिद्ध तीर्थ स्थान शुद्ध महादेव की ओर आ निकले। पार्वती को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस प्रदेश की सारी भूमि वर्षों से सूखी पड़ी है। लोग हाहाकार कर रहे हैं। उनके पास कुछ भी खाने को नहीं। पार्वती के इसका कारण पूछने पर शिव ने बताया कि इस देश के वासियों पर देवी प्रकोप के कारण १२ वर्षों तक यहां वर्षा नहीं होगी। शिव का नाद उस अवधि तक मूक रहेगा। सहसा उन्हें एक किसान उस मरुभूमि में हल चलाता हुआ दिखाई दिया, कारण पूछने पर शिव बोले, "यह इस लिए इतना कड़ा परिश्रम कर रहा है कि १२ वर्ष की लम्बी अवधि के उपरान्त कहीं यह हल चलाना ही न भूल जाए।" यह सुनते ही पारो को झट एक युक्ति सूझी। बोली यदि ऐसा है, तो भगवन्! बारह वर्ष की लम्बी अवधि में आप भी तो शंख बजाना भूल सकते हैं। भोले शिव को पार्वती की यह बात कुछ सत्य सी प्रतीत हुई। झट नाद हाथ में लेकर बोले "देखूं तो" इन तीन चार वर्षों में बिलकुल भूल ही न गया हूं।" और इतना कहते ही शिव ने नाद में

फूंक लगा दी। बस फिर क्या था। शंख बजते ही चारों ओर से घने बादलों की घटाएं उमड़ पड़ी और इतनी वर्षा हुई, इतनी वर्षा हुई कि देखते ही देखते सारी मरुभूमि जलथल हो गई। प्रदेश के वासियों के कष्ट निवारण हो गए। पार्वती इस पर बोली, "भगवन् आप तो कहते थे कि यहां १२ वर्षों तक अकाल ही रहेगा।" उत्तर में शिव मुस्करा भर दिये और बोले—

"प्रजा के भाग न्यारे"

शुद्ध महादेव से लगभग दो मील दूर उत्तर में स्थित गौरी कुण्ड में से जो जलधारा निकलती है वही आगे चल कर गुप्त गंगा के रूप में रेता के अन्दर ही अन्दर बहती हुई आगे बढ़ती है और देविका नदी कहलाती है। गंगा की भांति देविका के किनारे कई तीर्थ स्थान हैं। पुरमंडल भी इन्हीं में से है। पुरमंडल तीर्थ स्थान का जन्म काश्मीर के प्राचीन राजा वैणीदत्त के साथ जोड़ा जाता है। इतिहास के पन्ने यद्यपि ऐसा प्रमाण उपस्थित नहीं करते फिर भी एक किवंदन्ती है कि वैणीदत्त एक बार शिकार खेलता हुआ जम्मू के पूर्व में आन पहुंचा। वहां सहसा एक गीदड़ी को उसका तीर लगा और वह घायल हो कर मर गई। शिकार से लौटने पर राजा को पता चला कि उसके घर में एक कन्या ने जन्म लिया है। पर वह लड़की जाने क्यों सिर की पीड़ा से व्यथित है और कोई भी उपचार उसे रोगमुक्त नहीं कर पाया है। राजा ने बड़े-बड़े ज्योतषियों और पण्डितों को बुलाया और उन्हें ग्रह आदि देखने को कहा। इस खोज से उन्हें मालूम हुआ कि राजा के एक तीर द्वारा जम्मू के पूर्व में एक गीदड़ी मारी गई थी और उसी ने कन्या के रूप में उसके घर जन्म लिया है। राजा का वह तीर अभी तक गीदड़ी की खोपड़ी में लगा हुआ है। जब तक वह तीर उसके सिर से निकाला नहीं जाता उसकी लड़की सिर की पीड़ा से मुक्त नहीं हो सकती। राजा वैणीदत्त को उसी स्थान पर दोबारा जाना पड़ा। गीदड़ी के सिर से तीर निकाला ही था कि वहीं उन्हें शिव की मूर्ति पड़ी हुई मिली। शिव मूर्ति के स्थान पर उसने एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया, जिस से पुरमंडल तीर्थ की स्थापना हुई। इस प्रकार अन्य तीर्थ स्थानों, नगरों, घाटियों और नदी नालों के सम्बन्ध में भी कई एक लोक कथाएं हैं जो यहां के पुरातन इतिहास और जनजीवन की द्योतक हैं। जितना विविध है यह प्रदेश उतने ही विविध रूप और रंग लिए है यहां का लोक कथा साहित्य।



क
क वि ता
ता

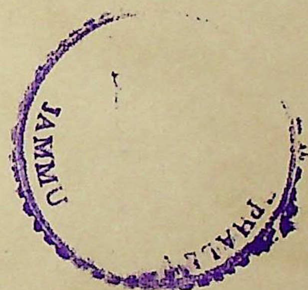
सूर्य का स्वागत

रणधीर सिंह चन्द



आयु भर रातों की कालिख से जिसने भय खाया है
आज सूर्य का स्वागत करने से मानो, वह घबराया है
उसे पवन के हर झोंके ने, हरेक बार अहसास कराया
कि प्रकाश-ऋतु उसके चेहरे पर रातों पीछा ही बाकी छोड़ गई है।
कुछ दिन पहले, उसने अपनी परछांई को गहरा देखा
उसकी आंखों आगे सूरज घटा-बढ़ा
औ, वह अपनी परछाईं पर इतना आशिक था
कि सूरज की हस्ती को ही गया नकार।
कितने दिन उसके घर का दरवाज़ा बंद रहा
उसने अंगीठी पर पड़ी तस्वीरों को, उल्टा करके रख छोड़ा था।
बीत गये कुछ दिन फिर यूं ही, गर्माई, अनिंद्य आंखों से
जब उसने तस्वीर को सीधा किया, निहारा
उसे लगा अपनापन भी कुछ खुला-खुला सा।
किन्तु उसे तो मौलिकता का मान बहुत था
उसके जाने सारा ही संसार गेट के बाहर खड़ा था
उसके नयनों में कोलम्बस की फोटू थी
उसने बीच बाज़ार ठहर कर दी आवाज़ें
औ हर शै की कीमत मुंह मांगी दी उसने
निज स्वर में सिहरन ऐसी उसने पनपाई
कि अर्द्ध नग्न शरीरों में, नेत्रों को चुंधियाने की कंपकंपी भरे
नगर की किरणें उसके दरवाज़े तक आईं
किन्तु कुछ रातों में उसने, चंचलता के सातों रंगों को पहचाना
औ, उसके अहसास के द्वारे पुनः बन्द हो गये एक बार।
अब तो उसको अपनी ही परछाईं से भी डर लगता है
औ' उसकी खामोशी पत्थर तोड़ रही है।




JAMMU


JAMMU
AND
KASHMIR
ACADEMY OF ART, CULTURE & LANGUAGES